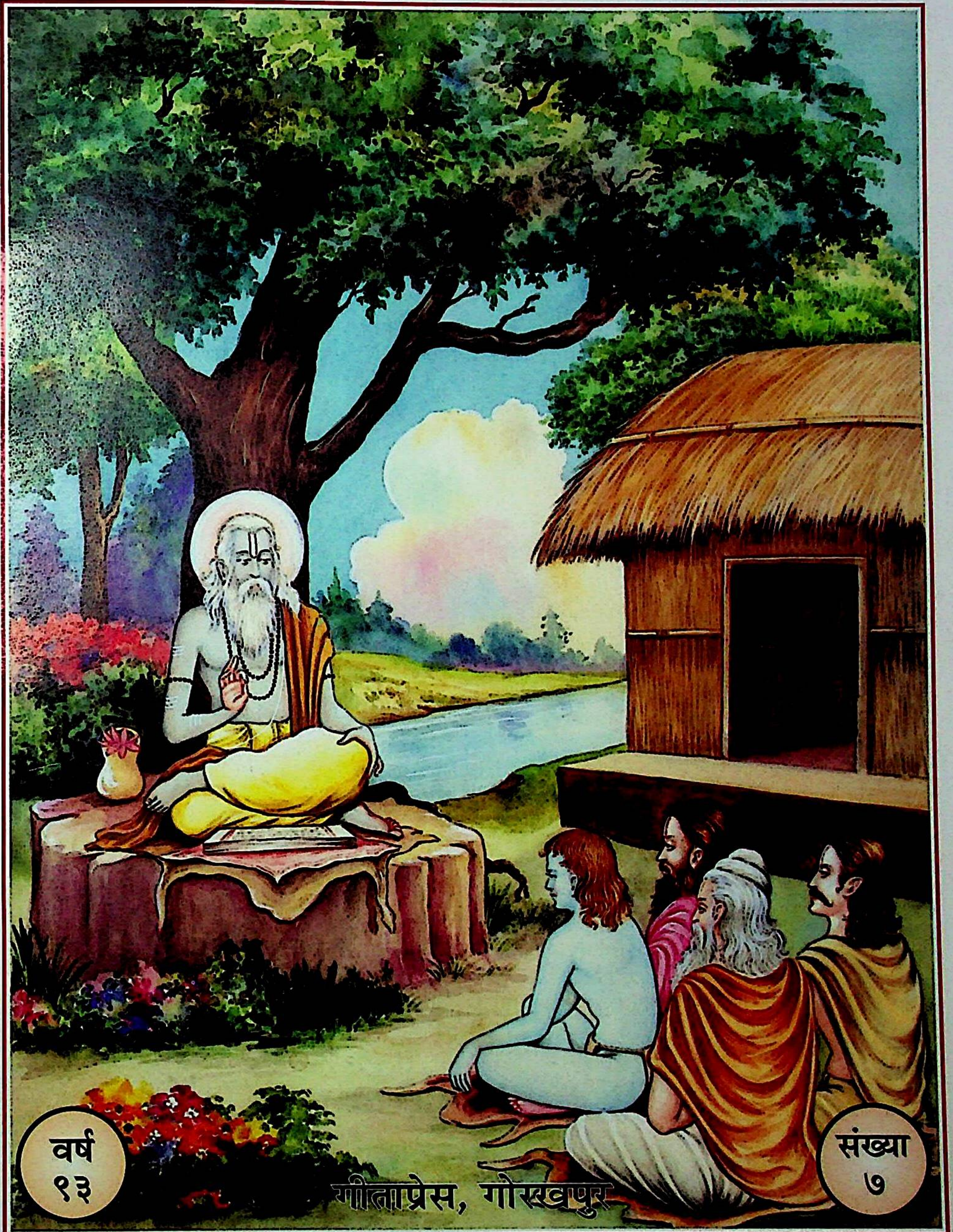
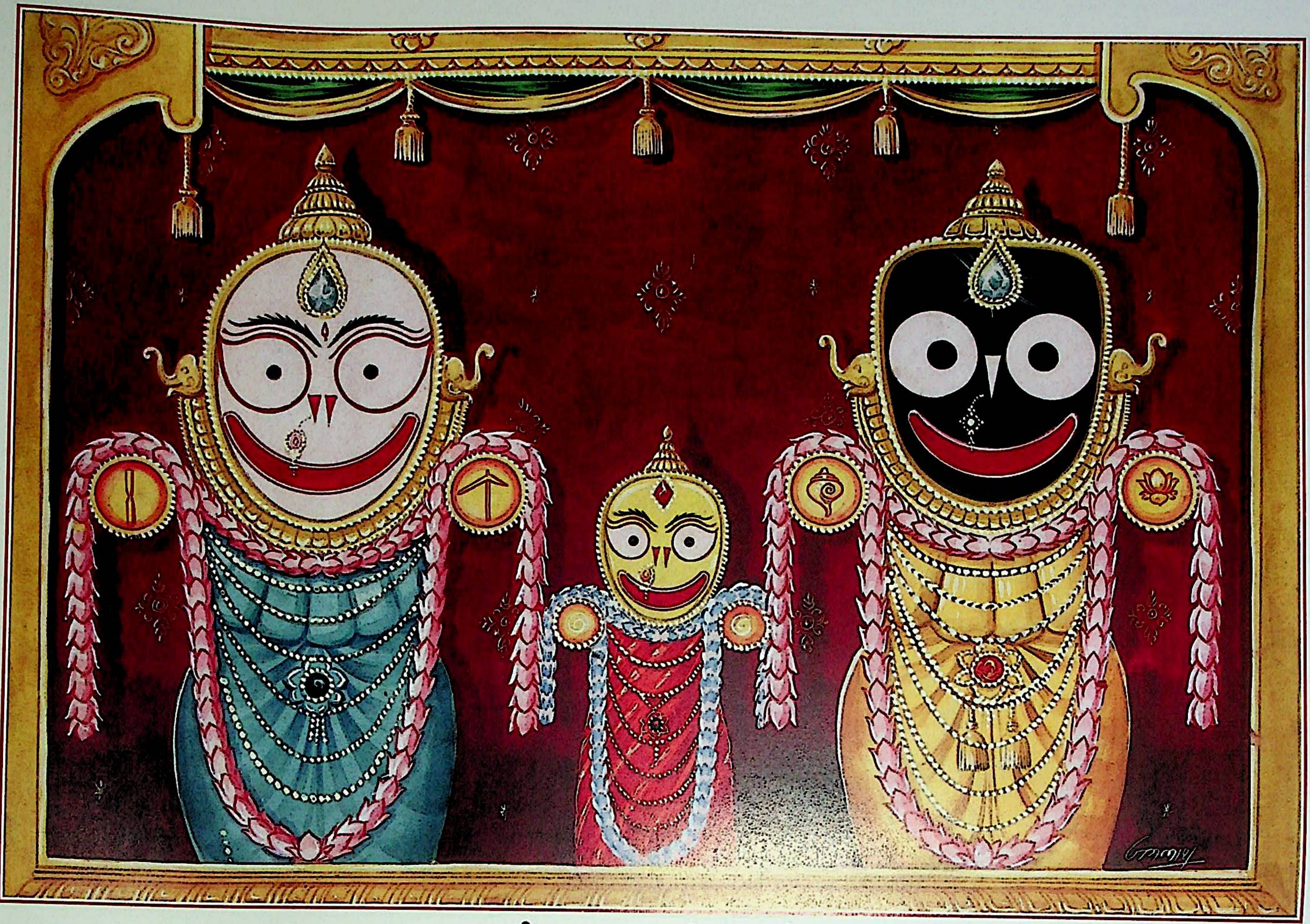
* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

# कल्याण

मूल्य १० रुपये




महर्षि वेदव्यास



श्रीबलभद्र, सुभद्रा एवं जगन्नाथजी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



# कल्याण

यज्जापः सकृदेव गोकुलपतेराकर्षकस्तत्क्षणाद्यत्र प्रेमवतां समस्तपुरुषार्थेषु स्फुरेत्तुच्छता।
यन्नामाङ्कितमन्त्रजापनपरः प्रीत्या स्वयं माधवः श्रीकृष्णोऽपि तदद्भुतं स्फुरतु मे राधेति वर्णद्वयम्॥

वर्ष ९३ गोरखपुर, सौर श्रावण, वि० सं० २०७६, श्रीकृष्ण-सं० ५२४५, जुलाई २०१९ ई० संख्या ७
पूर्ण संख्या ११११२

## श्रीबलभद्र, सुभद्रा एवं जगन्नाथजीकी प्रार्थना

नमस्ते हलधृग् राम नमस्ते मुसलायुध। नमस्ते रेवतीकान्त नमस्ते भक्तवत्सल॥
नमस्ते बलिनां श्रेष्ठ नमस्ते धरणीधर। प्रलम्बारे नमस्तेऽस्तु त्राहि मां कृष्णपूर्वज॥
नमस्ते सर्वगे देवि नमस्ते शुभसौख्यदे। त्राहि मां पद्मपत्राक्षि कात्यायनि नमोऽस्तु ते॥
जय कृष्ण जगन्नाथ जय सर्वाघनाशन। जय चाणूरकेशिघ्न जय कंसनिषूदन॥
जय पद्मपलाशाक्ष जय चक्रगदाधर। जय नीलाम्बुदश्याम जय सर्वसुखप्रद॥

हल धारण करनेवाले राम! आपको नमस्कार है। मुसलको आयुधरूपमें रखनेवाले! आपको नमस्कार है। रेवतीरमण! आपको नमस्कार है। भक्तवत्सल! आपको नमस्कार है। बलवानोंमें श्रेष्ठ! आपको नमस्कार है। पृथ्वीको मस्तकपर धारण करनेवाले शेषजी! आपको नमस्कार है। प्रलम्बशत्रो! आपको नमस्कार है। श्रीकृष्णके अग्रज! मेरी रक्षा कीजिये।

देवि! तुम सर्वत्र व्याप्त रहनेवाली और शुभ सौख्य प्रदान करनेवाली हो। तुम्हें बारंबार नमस्कार है। पद्मपत्रोंके समान विशाल नेत्रोंवाली कात्यायनी-स्वरूपा सुभद्रे! मेरी रक्षा करो। तुम्हें नमस्कार है।

जगन्नाथ श्रीकृष्ण! आपकी जय हो। सब पापोंका नाश करनेवाले प्रभो! आपकी जय हो। चाणूर और केशीके नाशक! आपकी जय हो। कंसनाशन! आपकी जय हो। कमललोचन! आपकी जय हो। चक्रगदाधर! आपकी जय हो। नील मेघके समान श्यामवर्ण! आपकी जय हो। सबको सुख देनेवाले परमेश्वर! आपकी जय हो। [ नारदपुराण ]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर श्रावण, वि० सं० २०७६, श्रीकृष्ण-सं० ५२४५, जुलाई २०१९ ई०

# विषय-सूची



## चित्र-सूची



जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹२५०

पंचवर्षीय शुल्क ₹१२५०

विदेशमें Air Mail शुल्क — वार्षिक US$ 50 (₹3000), पंचवर्षीय US$ 250 (₹15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : gitapress.org | e-mail : kalyan@gitapress.org | ✆ 09235400242 / 244

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।
Online सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु-gitapress.org पर Online Magazine Subscription option को click करें।
अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें।

# कल्याण

***याद रखो***—निकम्मा मन प्रमाद करता है। जबतक वह किसी दायित्वपूर्ण कार्यमें लगा रहेगा, तबतक उसे व्यर्थकी, अनावश्यक तथा न करनेयोग्य बातोंके सोचनेका अवसर ही नहीं मिलेगा, पर जहाँ दायित्वके कामसे छुटकारा मिला—स्वच्छन्द हुआ कि मन उन विषयोंको सोचेगा, जिनका स्मरण भी उसे कार्यके समय नहीं होता था।

***याद रखो***—जब नया साधक ध्यानका अभ्यास आरम्भ करता है, तब उसके सामने सबसे बड़ी एक यही कठिनाई आती है कि अन्य समय जिन सड़ी-गली, गन्दी और भयावनी बातोंकी उसे कल्पना भी नहीं होती, वे ही उस समय याद आती हैं और वह घबरा-सा जाता है। इसका कारण यह है कि वह जिस वस्तुका ध्यान करना चाहता है, उसमें तो मन अभ्यस्त नहीं है और जिन विषयोंमें अभ्यस्त है, उनसे उसे हटा दिया गया है; ऐसी हालतमें वह निकम्मा हो जाता है। पर निकम्मा रहना उसे आता नहीं; इसलिये वह उन पुराने चित्रोंको उधेड़ने लगता है, जो उसपर संस्काररूपसे अंकित हैं और जिनके उधेड़नेका उसे अन्य दायित्वपूर्ण कार्योंमें संलग्न रहते समय अवसर नहीं मिलता।

***याद रखो***—यदि साधक इस स्थितिमें घबराकर ध्यानके अभ्यासको नहीं छोड़ बैठेगा और लगनके साथ अभ्यास करता रहेगा तो कुछ ही समयके बाद अभ्यास दृढ़ हो जानेपर मन ध्येय वस्तुके स्वरूपमें रम जायगा और फिर तदाकार भी हो जायगा।

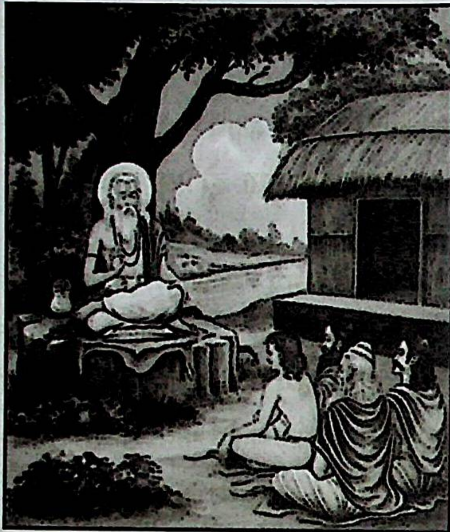
***याद रखो***—प्रमादी मनवाला मनुष्य ही ऐसे काम कर बैठता है, जो उसे नहीं करने चाहिये। प्रमादका अर्थ ही है—करनेयोग्य कर्मका न करना और न करनेयोग्यका करना। इसलिये मनको निरन्तर शुभ चिन्तनमें लगाये रखो और उसका उसपर इतना दायित्व थोप दो कि यह काम तुम्हें अवश्य करना है एवं सुन्दर सुव्यवस्थित रूपसे करना है। कार्यमें इतना संलग्न रहना चाहिये कि उसीका चिन्तन करते-करते नींद आ जाय और उठते ही फिर उसीका चिन्तन हो। ऐसा होनेपर तदाकारवृत्ति शीघ्र और सहज होती है।

***याद रखो***—नये विषयमें लगनेसे मन एक बार घबराता है, रुकता है, ऊबता है और कभी-कभी प्रबलरूपसे उसे अस्वीकार भी कर देता है; परंतु इससे घबराओ मत। गाय पहले-पहल नयी जगह, नये खूँटेपर बँधनेसे इनकार करती है, चाहे वह नयी जगह उसके लिये पहलीकी अपेक्षा कितनी ही अधिक सुखप्रद क्यों न हो; जरा-सी रस्सी ढीली होते ही या अवसर पाते ही भागकर पुरानी जगह पहुँच जाती है। इसी प्रकार मन भी नये विचारमें लगना नहीं चाहता। और इसी कारण विषय-चिन्तनमें अभ्यस्त मन भगवच्चिन्तनमें लगनेसे घबराता, रुकता, उकताता और इनकार करता है। पर यदि निराश न होकर उसे निरन्तर लगाते जाओगे तो वह विषय-चिन्तनको छोड़कर भगवच्चिन्तनमें वैसे ही लग जायगा, जैसे गौ कुछ दिनों बाद पुरानी जगहको भूलकर नयी जगहमें ही रम जाती है।

***याद रखो***—जीवका विषय-चिन्तनका अभ्यास बहुत पुराना है। उसे छुड़ाकर भगवच्चिन्तनमें लगानेमें यदि एक मानव-जीवनका आधेसे अधिक काल भी लग जाय तो भी बहुत थोड़ा ही है। मन बड़ा दुर्निग्रह और चंचल है, पर अभ्यास (नूतन-वस्तु-भगवच्चिन्तनमें बराबर लगाने) और वैराग्य (पुराने विषयचिन्तनके दुःख-दोष दिखा-दिखाकर उससे हटाने)-का सावधानीके साथ सतत प्रयोग करनेपर वह भगवच्चिन्तनपरायण हो ही जायगा। फिर किसी भी प्रमादकी आशंका या सम्भावना नहीं रहेगी। **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

# महर्षि वेदव्यास



तं नमामि महेशानं मुनिं धर्मविदां वरम्।
श्यामं जटाकलापेन शोभमानं शुभाननम्॥
मुनीन् सूर्यप्रभान् धर्मान् पाठयन्तं सुवर्चसम्।
नानापुराणकर्तारं वेदव्यासं महाप्रभम्॥

'जो धर्मके निगूढ़ तत्त्वको जाननेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं, जिनका वर्ण श्याम है और जिनका मंगलकारी मुखमण्डल जटाजूटसे सुशोभित है तथा जो सूर्यके समान प्रभावाले मुनियोंको धर्मशास्त्रोंका पाठ पढ़ानेवाले हैं, ज्योतिर्मय हैं, अत्यन्त कान्तिमान् हैं, सभी पुराणों तथा उपपुराणोंके रचयिता हैं, उन महेशान वेदव्यासजीको बारम्बार नमस्कार है।'

साक्षात् नारायण ही जगद्गुरु व्यासके रूपमें अज्ञानान्धकारमें निमग्न प्राणियोंको सदाचार एवं धर्माचरणकी शिक्षा देनेके लिये अवतीर्ण हुए और प्रसिद्धि यही है कि व्यासजी आज भी अजर-अमर हैं। सच्चे भक्तोंको आज भी उनके दर्शन होते हैं। वे वसिष्ठजीके प्रपौत्र, शक्ति ऋषिके पौत्र, पराशरजीके पुत्र तथा महाभागवत शुकदेवजीके पिता हैं। वे शंकराचार्य, गोविन्दाचार्य और गौडपादाचार्य आदि विभूतियोंके परमगुरु रहे हैं। पुराणोंमें प्रसिद्धि है कि यमुनाके द्वीपमें उनका प्राकट्य हुआ, इसलिये वे 'द्वैपायन' कहलाये और श्याम (कृष्ण) वर्णके थे, इसलिये 'कृष्णद्वैपायन' कहलाये। वेदसंहिताका उन्होंने विभाजन किया, इसलिये वे 'व्यास' किंवा 'वेदव्यास' के नामसे प्रसिद्ध हुए। इतिहास, पुराण, उपपुराण, ब्रह्मसूत्र, व्यासस्मृति आदि धर्मशास्त्रों, योगदर्शन आदिके भाष्योंके वे ही रचयिता हैं। आजके विश्वका सारा ज्ञान-विज्ञान महर्षि वेदव्यासजीका ही उच्छिष्ट है, अतः **'व्यासोच्छिष्टं जगत् सर्वम्'** की उक्ति प्रसिद्ध है। **'यन्न भारते तन्न भारते'**के अनुसार धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष आदिके विषयमें उनके द्वारा विरचित महाभारतमें जो कुछ कहा गया है, वही अन्य लोगोंने कहा है और जो उन्होंने नहीं कहा, वह अन्यत्र भी नहीं मिलता अर्थात् अन्यत्र कोई नवीनता नहीं है, जो व्यासजीने कह दिया, वही सबके लिये आधेय बन गया।

भगवान् व्यासदेवका शुद्ध सत्संगरूपी धर्म-सत्र विविधरूपसे निरन्तर चलता रहता था। उनकी धर्मगोष्ठीमें ब्रह्मतत्त्वका निरूपण, परमात्माके निर्गुण-सगुण स्वरूपोंका विचार, धर्म-कर्मोंकी व्यापकता तथा उनके फलाफलकी मीमांसा, धर्माचरणकी महिमा आदि विषयोंपर गहन चर्चा होती रहती थी। वे स्वयं भी धर्मके आचरण तथा सदाचारके पालनमें निरन्तर निरत रहते थे।

वस्तुतः धर्म-तत्त्वके विषयमें आज संसार जो कुछ भी जानता है, वह वेदव्यासजीकी ही देन है। वेद तो धर्मसंहिताएँ ही हैं। पुराणोंमें धर्म, दर्शन एवं आचार-मीमांसा पद-पदपर भरी पड़ी है। महाभारत तो धर्मविषयक कोश ही है। वह व्यासजीकी ही रचना है। स्मृतियाँ तो 'व्यास', 'लघुव्यास' इस प्रकारसे उनके नामसे ही प्रसिद्ध हैं। वस्तुतः सच्चा धर्म और सम्यक् आचारदर्शन व्यासदेवकी वाणीमें ही संनिहित है। इसके लिये सारा विश्व अनन्तकालतक उनका ऋणी रहेगा। उनकी महिमा अपार है। शास्त्रोंमें उनका दिव्य चरित्र अनेक प्रकारसे गुम्फित है। वेदव्यासजीने एक ही वेदके ऋक्, यजुः, साम और अथर्व नामसे चार विभाग किये। उन्होंने ऋग्वेद पैलको, सामवेद जैमिनिको, यजुर्वेद वैशम्पायनको और अथर्ववेद सुमन्तुको पढ़ाया था। उन्होंने परमहंसोंकी संहिता भागवतकी रचनाकर उसे अपने निवृत्तिपरायणपुत्र शुकदेवजीको पढ़ाया था।

# धर्मकी वेदीपर

( ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका )

जो मनुष्य अपने आपको धर्मके लिये समर्पित कर देता है, उसकी इस लोकमें कीर्ति होती है एवं मरनेपर वह सद्‌गतिको प्राप्त होता है। भगवान् श्रीकृष्ण स्वधर्म-पालनपर जोर देते हुए गीतामें अर्जुनके प्रति कहते हैं—

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥

(गीता ३।३५)

'अच्छी प्रकार आचरणमें लाये हुए दूसरेके धर्मसे गुणरहित भी अपना धर्म अति उत्तम है। अपने धर्ममें तो मरना भी कल्याणकारक है और दूसरेका धर्म भयको देनेवाला है।'

जब अपने धर्मके पालनमें कुछ कमी भी रह जाय तो भी वह कल्याणकारक है, फिर अच्छी तरह धर्मका पालन करनेसे कल्याण हो जाय, इसमें तो कहना ही क्या है।

भारतके इतिहासमें अनेक ऐसे वीर-पुरुषोंके चरित्र आये हैं, जिन्होंने धर्मरक्षार्थ अपने प्राणोंकी भी बाजी लगा दी थी। पूर्वकालकी बात है, चक्रवर्ती सम्राट् महाराज दिलीपके कोई सन्तान नहीं थी, इससे अन्य सब प्रकारके सुख रहते हुए भी वे दुखी रहा करते थे। सन्तान-प्राप्तिका उपाय पूछने वास्ते वे अपनी धर्मपत्नी राजमहिषी सुदक्षिणाके साथ अपने कुलगुरु महर्षि वसिष्ठके आश्रममें गये। वसिष्ठजीने उनको कामधेनु-पुत्री नन्दिनीकी सेवा करनेका आदेश दिया। उनके आदेशके अनुसार नन्दिनीकी भलीभाँति सेवा करते हुए बीस दिन बीत गये। इक्कीसवें दिन नन्दिनीने राजाकी परीक्षा लेनी चाही। राजा जंगलमें जब पर्वतकी शोभा निहारनेमें दत्तचित्त थे, उसी समय उन्हें अचानक नन्दिनीका भयत्रस्त करुणक्रन्दन सुनायी पड़ा। राजाने पीछेकी तरफ मुड़कर देखा तो वे स्तब्ध रह गये, एक विशाल वनराज सिंहने नन्दिनीको दबोच रखा था, राजाने उसे मारनेके लिये धनुषपर तीर चढ़ाया, परंतु उनका हाथ वहीं धनुषके साथ चिपक गया। निरुपाय होकर राजा चुपचाप खड़े रहे तो सिंह गर्जना करता हुआ-सा बोला—'राजन्, मुझे कोई साधारण सिंह न समझ लेना, भगवान् शंकरका मैं गण हूँ और उनकी आज्ञासे सामने दिखायी देनेवाले इस देवदारुके रक्षार्थ यहाँ रह रहा हूँ। जो पशु कालके वशीभूत होकर यहाँ आ जाता है, वह मेरा भक्ष्य है। आज यह गौ यहाँ मेरा भोजन बनी है। अब आप लौट जाइये, इसे मेरे शक्तिशाली पंजोंसे मुक्त करा सकना आपके हाथकी बात



नहीं है।' राजा बोले—'वनराज! मैं गुरुकी आज्ञासे इस गौकी सेवामें तत्पर हूँ, आप भगवान् शंकरके अनुचर हैं, सो बहुत अच्छी बात है। भगवान् शंकर मेरे भी पूजनीय हैं, परंतु मेरे गुरु महाराजके धनको मैं अपनी आँखोंके सामने नष्ट होता कैसे देख सकता हूँ?

अतः हे सिंह! आप मेरे इस विनाशी शरीरको खाकर अपनी क्षुधा शान्त कीजिये एवं इस अबला बेचारी गौको छोड़ दीजिये।'

सिंह बोला—'राजन्! मूर्ख न बनिये, यदि आप जीवित रहे तो न जाने आपके हाथसे अन्य कितने जीवोंकी रक्षा होगी तथा इस एक गौकी जगह आप और हजारों दुधारु गायें देकर अपने गुरु महाराजको भी प्रसन्न कर सकते हैं। राजन्, अपने इस कल्याणकारी, शक्तिशाली शरीरकी रक्षा कीजिये। आपका राज्य पूरी धरतीपर स्थित है तथा वह स्वर्गके ही समान सब प्रकारसे सम्पन्न

है। शरीर न रहनेसे आप उसका भी भोग कैसे कर सकेंगे?'

पर राजा बोले—'सिंह! मैं क्षत्रिय हूँ, कष्टमें पड़े जीवकी रक्षा करना ही मेरा धर्म है। फिर इस गौकी तो मैं सेवामें संलग्न हूँ, यदि मैं इसे न बचा पाऊँ तो मुझे राज्यकी तथा प्राण रखनेकी भी क्या आवश्यकता है।

इस तरह राजाने सिंहको प्रसन्न कर लिया तथा सिंह गौके बदले उन्हें खा लेनेको राजी हो गया। सिंहद्वारा खाये जानेकी प्रतीक्षा करते हुए राजा सिर नीचा करके ज्यों ही बैठे त्यों ही आकाशसे देवताओंने पुष्प-वृष्टि की। नन्दिनी प्रसन्न होकर बोली, 'राजन्! उठो, यह सब मेरी ही लीला थी, वास्तवमें कोई भी पशु मुझे आक्रान्त नहीं कर सकता।' नन्दिनीने उनको वंश चलानेवाले पुत्र-रत्नकी प्राप्तिका वर दिया। आगे चलकर इसी वंशमें भगवान् रामका प्राकट्य हुआ।

इसी तरह महाराज उशीनरके पुत्र राजा शिबिका भी उपाख्यान आता है। महाराज शिबि अपने समयके प्रख्यात धर्मात्मा एवं शरणागतवत्सल नरेश थे। एक दिन जब वे अपनी राजसभामें बैठे थे, तभी अचानक एक कबूतर, जो कि अत्यन्त थका हुआ तथा भययुक्त दिखायी दे रहा था, उनकी गोदमें आकर गिर पड़ा। राजाने उसके भयके कारणको खोजनेके लिये ऊपर देखा तो एक बाज उन्हें दिखायी दिया। बाज बोला—महाराज, मेरे इस शिकारको छोड़ दीजिये, इससे मेरा तथा मेरे परिवारका पोषण होगा। नहीं तो मैं तथा मेरा कुटुम्ब भूखों मर जायँगे—उस पापके आप भागी होंगे? महाराज शिबि अत्यन्त दुविधामें पड़ गये। शरणमें आये हुए कबूतरको भी वे कैसे छोड़ सकते थे तथा बाजका कहना भी ठीक था। राजा बोले—बाज, तुम्हें तो अपने पालनके लिये मांसकी ही आवश्यकता है न? इस शरणागत कबूतरको तो मैं किसी तरह नहीं छोड़ सकता। इसके बदलेमें मैं इसके तोलके बराबर अपने शरीरका मांस काटकर तुझे दे देता हूँ। राजाकी इस बातसे बाज सहमत हो गया तो राजाने तराजू मँगाया तथा कबूतरको एक पलड़ेमें रखकर अपनी जंघासे मांस काटकर दूसरे पलड़ेमें रखा, परंतु कबूतरका पलड़ा भारी रहा। राजाने और मांस काटकर रखा, परंतु वह कबूतरवाला पलड़ा किसी भी तरह नीचा नहीं हो पा रहा था। अन्तमें राजा पूरे-के-पूरे तराजूमें बैठ गये। उनका तराजूमें बैठना ही था कि वहाँ न बाज दिखायी दिया और न कबूतर। वास्तवमें स्वर्गसे देवराज इन्द्र बाजका एवं अग्निदेव कबूतरका रूप धारण करके महाराज शिबिकी शरणागत-वत्सलताका परीक्षण करने आये थे एवं महाराज शिबिकी शरणागतवत्सलताको देखकर वे दंग रह गये और महाराजकी कीर्ति चिरस्थायी हो, ऐसा आशीर्वाद देकर वे लोग स्वर्ग चले गये।

इस तरह हमारे शास्त्र-पुराणोंमें बहुत-सी गाथाएँ आती हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि उस समयके जन-जीवनमें धर्मका कितना उच्च स्थान था। लोग धर्मपालनके लिये प्राणोंका भी परित्याग करनेको तत्पर रहते थे, परंतु धर्मका त्याग नहीं करते थे।

इतिहास बताता है कि यवन बादशाह अलाउद्दीन खिलजी, चित्तौड़की महारानी पद्मिनीके अनुपम सौन्दर्यपर आसक्त हो गया था तथा पद्मिनीको अपनी रानी बनानेके लिये उसने यथासम्भव हर उपाय कर लिया, पर किसी भी तरह वह अपने उद्देश्यमें सफल न हो सका। अन्तमें, उसने अपनी विशाल सेनाके साथ चित्तौड़पर चढ़ाई कर दी। चित्तौड़के वीर एक-एक करके युद्धभूमिमें काम आने लगे। राजपूतोंका अन्तिम जत्था जब किलेसे बाहर लड़ाई करने निकला, तब भीतरकी सभी स्त्रियाँ महारानी पद्मिनीके नेतृत्वमें जौहर (अग्निप्रवेश)-के लिये तैयार खड़ी थीं। महारानी पद्मिनीका धर्म-रक्षाके लिये भीषण आगमें प्रवेश करना था कि शेष सभी महिलाएँ एक-एक करके उस धधकती हुई आगमें कूद पड़ीं। देखते-ही-देखते उनके शरीर भस्मसात् हो गये। अलाउद्दीनकी विजय हुई, परंतु किलेमें प्रवेश करनेपर उन भारतीय महिलाओंके अपूर्व बलिदानको देखकर उसे दाँतों-तले अंगुली दबानी पड़ी।

भारतके पुरुष तो क्या महिलाएँ एवं बच्चे भी धर्म-पालनके लिये प्राणोंतककी आहुति देनेमें आगा-पीछा नहीं देखते थे।

मुगल बादशाह औरंगजेबका भीषण अत्याचार उन दिनों चालू था। हिन्दू लोगोंको अपने धर्मका पालन करनेके लिये बड़ी-बड़ी कीमतें चुकानी पड़ती थीं। ऐसे ही समयमें गुरु गोविन्दसिंहके दो अल्पवयस्क बच्चोंने अपने जीवित शरीरको दीवारमें जिन्दा चुनवा देना स्वीकार कर लिया, परंतु हिन्दू धर्मको छोड़कर मुसलिम धर्म ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया। उन्हें बड़े-बड़े प्रलोभन दिये गये, पर वे छोटे-छोटे बच्चे धर्मपर डटे रहनेके अपने निश्चयसे टस-से-मस नहीं हुए। अन्तमें उन बच्चोंको जीवित ही दीवारमें चुनवाना आरम्भ कर दिया गया। जब दीवार छोटे भाईके गलेतक आ गयी एवं बड़े भाईकी छातीतक ही आयी तो बड़े भाईकी दोनों आँखोंसे आँसू गिरने लगे। उसे रोता देख छोटा भाई तमककर बोला—'भैया, क्या आप मरनेसे डर रहे हैं।' बड़े भाईने उत्तर दिया—'नहीं'! कोई भी हिन्दू बच्चा धर्मके लिये मरनेसे नहीं डरता। लेकिन तुम अवस्थामें मुझमें छोटे होकर भी धर्मके लिये मरनेमें मुझसे अग्रणी हो और मुझे भगवान्‌के धाममें जानेमें देर हो रही है, इसी कारण मुझे रोना आ रहा है। भैया, तुम धन्य हो।

परंतु आज हम देख रहे हैं कि उसी भारतवर्षके बहुतसे लोग लोभके वशीभूत होकर धर्म, कर्म, संस्कृति—सबका परित्याग करते जा रहे हैं। जिस देशके भक्त प्रह्लादने धर्म एवं ईश्वरकी सत्तापर दृढ़ विश्वास रखते हुए अनेक कष्ट सहे। उन्हें बड़े-बड़े पर्वतोंसे गिराया गया, गजराजोंसे कुचलवाया गया, समुद्रमें फेंका गया, भीषण आगमें झोंका गया, परंतु फिर भी वे ईश्वरकी भक्तिमें अडिग रहे। अन्तमें उनके पिता हिरण्यकशिपु तलवार लेकर उन्हें मारनेको उद्यत हुए तो भगवान्‌ने निर्जीव खम्भेमें-से प्रकट होकर भक्तको बचाया। आज उसी देशके लोग धर्म और ईश्वरका मखौल कर रहे हैं। जो कोई थोड़ा-बहुत धर्मका पालन करते हैं, वे भी अधिकांशमें मान-बड़ाईके लिये करते हैं। निष्कामभावसे करनेवाले बहुत कम हैं। धर्म-पालन न करनेकी अपेक्षा तो सकामभावसे धर्मका पालन करना भी अच्छा है, परंतु कर्तव्यबुद्धिसे निष्कामभावपूर्वक जो धर्मपालन किया जाता है, वह सदा कल्याणकारक है।

मनुष्य-जीवन बड़े भाग्यसे मिलता है। इसका समय अल्प है। अतः जबतक हाथमें समय है, तभीतक हमलोगोंको चेत जाना चाहिये एवं धर्मपालनके लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये। समय बीतनेपर पश्चात्ताप करना पड़ सकता है। भारी-से-भारी विपत्तिके आनेपर भी हमें अपने धर्मका किसी भी हालतमें त्याग नहीं करना चाहिये। महाभारतमें कहा गया है—

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः॥

(स्वर्गारोहण० ५।६३)

अर्थात् मनुष्यको किसी भी कामनासे, भयसे, लोभसे या जीवनरक्षाके लिये भी कभी धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये; क्योंकि धर्म नित्य है और सुख-दुःख अनित्य हैं। इसी प्रकार जीव नित्य है और उसके बन्धनका हेतु अनित्य है।

संसारके सभी रिश्ते माने हुए एवं अनित्य हैं, मनुष्य अकेला ही इस संसारमें आता है एवं अकेला ही वापस जाता है। स्त्री, पुत्र, बन्धु-बान्धव आदिमें-से कोई भी उसका साथ नहीं दे सकता। केवल एकमात्र धर्म ही उसके साथ जाता है।

अतः मनुष्यको किसी भी कालमें अपने धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये। मरण-संकट भी उपस्थित हो जाय तो भी मनुष्यको चाहिये कि हँसते-हँसते मृत्युका वरण कर ले, परंतु स्वधर्मका त्याग किसी भी हालतमें न करे। इसीमें उसका सब प्रकारसे कल्याण है।

# भक्तके ऋणी भगवान्

( ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज )

एक बार संजयको धृतराष्ट्रने पाण्डवोंके पास यह जाननेके लिये भेजा कि युद्धके सन्दर्भमें उनके क्या विचार हैं? और जहाँतक सम्भव हो युद्ध न हो—संजय गये। जब वह वापस आये तो धृतराष्ट्रने पूछा कि वहाँके क्या समाचार हैं? जब संजयने सब बातें बतायीं तो वे अवाक् रह गये। संजयने कहा कि मैं धर्मराजसे मिला और उनसे निवेदन किया कि वे सन्तोष करें; क्योंकि महाराज धृतराष्ट्र अपने पुत्रोंको नहीं मना सके, अत: वे ही सन्तोष करें। तब धर्मराजने मुझे भगवान् कृष्णके पास जानेके लिये कहा। मैं जब भगवान् कृष्णके कक्षमें पहुँचा तो वहाँका बड़ा ही अद्भुत रूप देखा। भगवान् कृष्ण शयन-कक्षमें लेटे हुए थे, उनके दोनों चरण अर्जुनकी गोदमें थे और अर्जुनका एक पैर सत्यभामाकी गोदमें था और दूसरा द्रौपदीकी। मैं वहाँ बैठ न सका और मैंने सब कहानी भगवान् कृष्णको सुना दी, जब मैं कह चुका तो भगवान्ने पूछा कि संजय! सब कह चुके न? अरे! मेरे ऊपर द्रौपदीका ऋण है, जो कि नित्य प्रति बढ़ रहा है—

**ऋणमेतत् प्रवृद्धं मे हृदयान्नापसर्पति।**
**यद् गोविन्देति चुक्रोश कृष्णा मां दूरवासिनम्॥**

(जिस समय कौरवसभामें चीरहरणके समय द्रौपदीने 'गोविन्द' नाम लेकर आर्त स्वरमें मुझे पुकारा था। उस समय मैं हस्तिनापुरसे दूर था,मैंने दिव्य अदृश्य शक्तिसे यद्यपि वस्त्रावतार धारणकर उसकी लाज बचायी, तथापि मुझपर अभीतक वह ऋण बना हुआ है और बढ़ता ही जा रहा है, द्रौपदीने अपनी उस समयकी की गयी प्रतिज्ञाके अनुसार अपने केश बाँधे नहीं हैं, वह ऋण मेरे हृदयसे कभी निकल नहीं पाता।)

देखो! 'काँटा', 'शत्रु' और 'ऋण' रातको भी चुभते हैं, द्रौपदीका मेरे ऊपर ऋण है। जब मैं द्वारकामें था तब द्रौपदीने रोते हुए करुण स्वरमें मुझे 'गोविन्द' कहकर पुकारा था, जब उसका चीर भरी सभामें दुष्ट दु:शासनद्वारा खींचा जा रहा था—उस समय मैंने उसकी धरोहर ही तो उसे लौटायी थी। जब मैंने शिशुपालका वध किया था, तब सुदर्शनचक्रसे मेरी अँगुली कट गयी थी, उसमेंसे रक्त बहने लगा। वहाँ सत्यभामा, रुक्मिणी आदि सभी पटरानियाँ भी उपस्थित थीं। सबने देखा रक्त बहता हुआ, परंतु केवल द्रौपदीकी बुद्धिमें यह सूझ आयी कि तुरन्त अपनी साड़ी फाड़कर मेरी अँगुलीमें बाँध दी। वही अमूल्य फटी साड़ीके चीरने मेरे हृदयमें स्थान कर लिया—मैं उसका ऋणी हो गया। उसकी धरोहर मेरे पास सुरक्षित थी, वही कौरवोंकी भरी सभामें दुष्ट दु:शासनद्वारा चीर खींचे जाते समय द्रौपदीको अनन्त होकर मिली। मैं तो उसका ऋणी था और ऋण नित्य बढ़ता ही जाता है। सो, द्रौपदीके चीरका वह टुकड़ा अनन्त साड़ियोंके रूपमें उसीको प्राप्त हो गया, मैंने उसमें क्या किया?

इस दृष्टान्तका मूल कथ्य यह है कि जबतक आप प्रभुको समर्पित नहीं करोगे आपको तबतक कुछ प्राप्त भी नहीं होगा। जरा सोचो। ये पशु क्यों नंगे फिरते हैं, आपको क्यों सुन्दर-सुन्दर वस्त्र, अलंकार एवं भोज्यपदार्थ मिलते हैं? क्यों अनेक व्यक्ति भूखे-नंगे घूम रहे हैं? क्यों यह शूकर-कूकर विष्ठा-मल खाते फिर रहे हैं? जिन्होंने प्रभुको दिया, दान-धर्म किया, उन्हें प्राप्त हो रहा है, जिन्होंने कुछ नहीं किया, उन्हें कैसे मिलता? वे भूखे-नंगे घूम रहे हैं। देखो, भगवान् सब देखते हैं, वे सबके द्रष्टा हैं, साक्षी हैं, फिर भी सबसे निर्लेप हैं, निर्विकार हैं, निरीह हैं, निरंजन हैं; उन्हें कुछ नहीं चाहिये। आप भी उनसे जब माँगो तो यही माँगा करो कि हे प्रभु, मुझे सद्बुद्धि प्रदान करें और कुछ नहीं। वह प्रभु वाणी और मनसे अतीत होता हुआ भी उसको धारण करता है, जो कुछ आप श्रद्धा-भक्तिपूर्वक समर्पित करते हो, उसे ग्रहण भी करता है—'**अदृष्टो द्रष्टा।**'

भगवान् कहते हैं कि भक्तकी भावनाका उनके हृदयमें बड़ा स्थान है। आप जो भी मन-वचन-कर्मसे करते हो, उसे आप तो अल्पज्ञ होनेके कारण भूल जाते हो। परंतु परम सूक्ष्म रूपसे वह उस सर्वान्तर्यामी प्रभुकी

निगाहमें रहता है। 'निष्पादितः सकल....।'

पापोंका नाश करनेके लिये शुभकर्म करने चाहिये, झूठी शपथ लेते ही; पापकर्म करते ही पुण्य क्षीण हो जाते हैं। अतः निष्ठापूर्वक धर्म-कार्यों एवं शुभ कार्योंके सम्पादनमें निरत रहना चाहिये। प्रभु हमारे-आपके भले-बुरे सभी कार्योंपर दृष्टि रखते हैं। द्रौपदी तो साड़ी फाड़कर चीर बाँधनेकी घटनाको भूल गयी थीं, परंतु वे नहीं भूले। जब दस हजार हाथियोंका बल रखनेवाला दुःशासन भरी सभामें एकवस्त्रा द्रौपदीका चीर खींचने लगा और किसीने भी उसकी रक्षा नहीं की, तब असहाय होकर, करुण स्वरमें भक्ति-भावसे उसने उस सर्वशक्तिमान् भगवान्‌को पुकारा, भगवान्‌ने तुरन्त द्रौपदीकी भावनाको अनुभव किया और बिना एक क्षणकी देरी किये तत्काल उसकी रक्षा की। भगवान् कहते हैं कि संजय! मैंने द्रौपदीकी रक्षाकर उसके द्वारा 'गोविन्द-गोविन्द' नाम लेकर पुकारनेका कुछ बदला नहीं दिया, अपितु मैं तो उसका ऋणी था, उसकी धरोहरमात्र उसे देकर उसका ऋण चुकानेभरका मैंने तो प्रयास किया था। संजय! सुनो, क्या कोई ऐसा शास्त्र है, जो क्षत्रियको कहता हो कि तू वनमें रहा कर? अपने स्वामीसे कह देना कि जबतक वे पाण्डवोंका राज्य धर्मपूर्वक उन्हें वापस नहीं लौटा देंगे और द्रौपदीकी भाँति उनकी स्त्रियाँ विलाप नहीं करेंगी, द्रौपदीके समान विधवा-जैसा जीवन नहीं बितायेंगी, तबतक मैं उऋण नहीं हो सकता।

## श्रीवृन्दावन तो मेरा घर है

एक बार देवर्षि नारद अपनी वीणाकी तानपर हरि-गुण-गान करते हुए तीर्थराज प्रयाग पहुँचे। तीर्थराजने उनका बहुत स्वागत-सत्कार किया तथा अपने तीर्थराज होनेकी सारी घटना कह सुनायी। श्रीनारदजीने कहा—'भगवान्‌ने आपको तीर्थराजके पदपर अभिषिक्त तो किया है, किंतु मुझे इस विषयमें कुछ शंका है। क्या वृन्दावन भी अन्य तीर्थोंकी भाँति आपको कभी भी भेंट देनेके लिये उपस्थित होते हैं?' तीर्थराजने उत्तर दिया—'नहीं तो।'

श्रीनारदजीने पूछा—'फिर आप कैसे तीर्थराज हैं?' यह बात तीर्थराजके हृदयमें चुभ गयी। सोचा बात तो ठीक है। मैं फिर तीर्थराज कैसे हुआ? वे भगवान्‌के पास पहुँचे।

तीर्थराजको आते हुए देखकर भगवान्‌ने उनको यथोचित सम्मान दिया तथा उनके आनेका कारण पूछा। तीर्थराजने नम्रतासे कहा—'प्रभो! आपने मुझे तीर्थराजके पदपर अभिषिक्त तो किया है, किंतु वृन्दावन तीर्थ तो कभी भी मुझे भेंट देनेके लिये नहीं आते। फिर मैं तीर्थराज कैसे हुआ? यदि वृन्दावन-जैसा एक छोटा-सा तीर्थ मेरी अधीनता स्वीकार न करे तो मेरा तीर्थराज होना सर्वथा अनुचित है।'

प्रयागराजकी बात सुनकर भगवान् क्षणभरतक मौन हो गये। उनके नेत्रोंसे अश्रुबिन्दु छलक पड़े। उन्हें ब्रजका स्मरण हो आया। सखाओंके साथ गोचारण, नन्दबाबा और यशोदाका स्नेह तथा अपनी प्रियतमा किशोरी श्रीराधा, गोपियाँ तथा उनके साथ रास-विलास आदि अनेक लीलाएँ उनके हृदयमें क्रमशः स्फुरित होने लगीं। उनका हृदय द्रवित हो गया। तत्पश्चात् कुछ स्वस्थ होनेपर वे गम्भीर होकर कहने लगे—'तीर्थराज! मैने ठीक ही तुम्हें तीर्थोंका राजा बनाया है, परंतु अपने घरका राजा नहीं बनाया है। श्रीवृन्दावन मेरा अपना घर है। घर ही नहीं, मेरी प्राणप्रिया श्रीराधाजीकी परम विहार-स्थली भी है। वहाँकी अधिपति और ईश्वरी तो वे ही हैं। वे ही वृन्दावनेश्वरी हैं। मैं भी सदा वहीं निवास करता हूँ। अतः तुम तीर्थराज ही हो, इसमें कोई संदेह नहीं है। वृन्दावन केवल तीर्थ नहीं है, तुम भी किसी प्रकार वृन्दावनकी सेवा करनेके लिये आराधना कर सकते हो।' [प्रस्तुति—आचार्य श्रीरमाकान्तजी गोस्वामी]

# श्रीराधा-स्वरूप-तत्त्वका स्मरण

( नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार )

रसो यः परमानन्द एक एव द्विधा सदा।
श्रीराधाकृष्णरूपाभ्यां तस्यै तस्मै नमो नमः॥

'जो एक ही परमानन्द-रसरूप है, वही सदा दो प्रकारका बनकर लीलारत है और वह श्रीराधा-कृष्णरूप है। उसे मेरा बार-बार नमस्कार है।'

परात्पर परतत्त्वस्वरूप समग्र भगवान् सच्चिदानन्द हैं। ब्रह्म, परमात्मा इत्यादि उन्हींके विभिन्न, (पर) अभिन्न स्वरूप हैं। सत्-चित्-आनन्द उनके स्वरूपभूत गुण या उनकी नित्य स्वरूपा-शक्ति हैं। शक्ति और शक्तिमान्‌में नित्य अभेद है। एकके बिना दूसरेकी सत्ता सन्देहमें पड़ जाती है। शक्ति नहीं है तो शक्तिमान् कोई वस्तु नहीं, और शक्तिमान् न हो तो शक्तिका निवास कहाँ हो? शक्तिके दो स्वरूप नित्यसिद्ध हैं—अमूर्त और मूर्त। अमूर्त स्वरूपमें शक्ति शक्तिमान्‌में तिरोहित है। वहाँ परतत्त्व भगवान् अपनी आनन्दस्वरूपा ह्लादिनी आदि शक्तियोंके साथ निर्विशेष—निर्भेद रूपमें बाह्य-लीलारहित लीलामें स्थित हैं। इस अद्वैत तत्त्व-अवस्थामें प्रत्यक्ष लीलाविलास नहीं है, पर इसीके साथ युगपत् परतत्त्व भगवान्‌की निज स्वरूपभूता वे ही ह्लादिनी आदि शक्तियाँ लीलारसास्वादनके लिये मूर्तरूपमें भी प्रकट रहती हैं। यहाँ शक्तियोंके साथ परतत्त्व शक्तिमान् भिन्न-भिन्न रूपोंमें लीलायमान रहते हैं। परस्वरूपके तत्त्वतः एक होनेपर भी अनादिकालसे दोनों-रूपोंमें लीला-रसका आस्वादन चलता रहता है। भगवान्‌की स्वरूपा-शक्तियोंमें आनन्द या ह्लादिनी ही सर्वप्रधान है। वह ह्लादिनी-शक्ति 'भाव' रूपा है और शक्तिमान् भगवान् 'रस'-रूप हैं। ह्लादिनीभावकी पूर्ण परिणति 'महाभाव' है और भगवान् 'रसराज' हैं। महाभावरूपा श्रीराधाके बिना रसराज श्रीकृष्णकी और रसराज श्रीकृष्णके बिना महाभावरूपा श्रीराधा और उनकी कायव्यूहरूपा गोपसुन्दरियोंकी एवं उन दोनोंके बिना उत्तरोत्तर दिव्य परमानन्दकी नित्य आनन्दवर्धक सत्ता सिद्ध नहीं होती।

विनां राधां कृष्णो न खलु सुखदः सा न सुखदा
विना कृष्णं द्वाभ्यामपि बत विनान्या न सरसाः।
विना रात्रिं नेन्दुस्तमपि न विना सा च रुचिभाग्
विना ताभ्यां जृम्भां दधति कुमुदिन्योऽपि नितराम्॥

'श्रीराधाके बिना श्रीकृष्ण सुखद नहीं है और श्रीकृष्णके बिना राधा सुखदा नहीं है और इन दोनोंके बिना अन्य सखियाँ भी रसमयी नहीं हैं—जैसे रात्रिके बिना सुधांशु शोभायुक्त नहीं, और सुधांशुके बिना रजनी शोभामयी नहीं है; और इन दोनोंके बिना कुमुदिनी प्रमुदित नहीं होती।'

श्रीगोपांगनाएँ भगवदानन्दस्वरूपा श्रीराधाका ही स्वरूप-विस्तार हैं। ये सभी गोपांगनाएँ लौकिक कामरागसे सर्वथा रहित श्रीकृष्णप्रेम-रसमयी हैं। इसीसे स्वयं ब्रह्माजीने भी इन श्रीगोपरमणियोंकी चरणरजका स्पर्श प्राप्त करनेके लिये व्रजमें किसी भी जड़-चेतन योनिमें प्रकट होनेकी कामना की थी—

तद् भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां
यद् गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम्।
यज्जीवितं तु निखिलं भगवान् मुकुन्द-
स्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव॥
(श्रीमद्भागवत १०।१४।३४)

श्रीउद्धवजीने इनकी चरण-रज पानेके लिये गुल्मलता-ओषधि बनकर ब्रजमें प्रकट होना चाहा था। अतः सब स्वसुख-वासना-लेश-गन्ध-विहीन कृष्ण-सुख-विग्रहा श्रीगोपांगनाओंकी महिमा अनन्त, अनिर्वचनीय और अचिन्त्य है। इनमें सबकी मूल आधाररूपा, आत्मरूपा, गोपीप्रेमकी मूल उत्सरूपा हैं—महाभावमयी श्रीराधिकाजी।

श्रीराधा नित्य निर्गुणरूपा प्राकृत गुणोंसे रहित, प्रियतमा श्रीकृष्णसुखकी आधाररूपा हैं और श्रीकृष्ण भी निर्गुण-प्राकृत गुणोंसे शून्य (पर राधा-प्रेमसमुद्रमें नित्य निमज्जित) हैं। श्रीराधा-कृष्णका नित्य लीलाविहार परम प्रेममय, सकल सरस सम्पूर्ण परमानन्दस्वरूप है। परम भागवत परमहंसोंका तो वही जीवन है। राधाप्राण-वल्लभ श्रीकृष्ण अपने अतुल असमोर्ध्व दिव्य सौन्दर्य, माधुर्य, सौशील्य, सौगन्ध्य प्रभृति स्वरूपगुणोंसे सुशोभित हैं। उनके सौन्दर्य-

लेशसे अनन्त अनंगोंके सौन्दर्यका विकास और विस्तार होता है। उनका मधुर माधुर्य-लेश ही विश्व-ब्रह्माण्डमें अनादिकालसे अनन्तकालतक नानाविध मधुर रूपों तथा भावोंमे विकीर्ण है। उनके सौशील्यकी छाया-कल्पनासे जगत्में सुशीलताका आदर्श स्थिर है और उनके सुगन्ध-लेश-स्पर्शसे ही पुष्पादिसे परम आनन्दवर्धक विविध विचित्र सौरभका प्रसार होता है। ये श्रीकृष्ण ही विभिन्न अवतारोंके अवतारी हैं। इसी प्रकार समस्त सौन्दर्य, माधुर्य, सौशील्य और सौगन्ध्यकी जो अनन्त आकररूपा हैं, वे ही स्वरूपाशक्ति श्रीराधा हैं। ये प्रियतम श्रीकृष्णकी परम प्रेयसी और वरद वल्लभा हैं। विश्वब्रह्माण्डमें विभिन्न रूपोंमें प्रकाशित तथा पूजित दुर्गा, काली इत्यादि शक्तियाँ इन्हींकी अंश-स्वरूपा हैं।

## शक्ति और शक्तिमान्

श्रीराधाजी भगवान् श्रीकृष्णकी नित्य अभिन्न स्वरूपाशक्ति हैं। यह कहा जा चुका है कि शक्तिमान्में शक्ति दो रूपोंमें रहती है—'अमूर्त' रूपमें और 'मूर्त' रूपमें। शक्तिमान्में जो शक्ति नित्य सत्ता है, वह अमूर्त है और जो स्वरूपसे सर्वथा सर्वदा सब प्रकारसे अभिन्न होते हुए उस दिव्य शक्ति-सत्ताकी अधिष्ठात्रीरूपमें भिन्न रूपसे प्रकट विविध विचित्र स्वरूपभूता लीलामयी-लीलाकारिणी है, वह मूर्त है। भगवान्के अचिन्त्यानन्त स्वरूपोंमें जैसे 'आनन्द' स्वरूप प्रधान है, वैसे ही उनकी अचिन्त्यानन्त शक्तियोंमें आनन्दरूपा 'ह्लादिनी' शक्ति प्रधान है। स्वयं रसरूप रसराज भगवान् जिस दिव्य आनन्दमयी शक्तिके द्वारा स्वरूपानन्दका रसास्वादन करते हैं और प्रेमी भक्तोंको स्वरूपानन्द-रसका आस्वादन कराते हैं, उसी शक्तिका नाम 'ह्लादिनी' है। वही स्वरूपतः नित्य अभिन्न और लीलामयी अधिष्ठात्री मूर्तिके रूपमें नित्य भिन्न है, वे वही ही श्रीराधा हैं।

श्रीराधिकाजी स्वयं यशोदाजीसे कहती हैं—

**'रा'शब्दश्च महाविष्णुर्विश्वानि यस्य लोमसु।**
**विश्वप्राणिषु विश्वेषु धा धात्रीमातृवाचकः॥**
**धात्री माताहमेतेषां मूलप्रकृतिरीश्वरी।**
**तेन राधा समाख्याता हरिणा च पुरा बुधैः॥**

(ब्रह्मवै० कृष्णजन्म० १११।५७-५८)

'रा' शब्दका अर्थ है—जिनके एक-एक लोमकूपमें सम्पूर्ण विश्व भरे हैं, वे महाविष्णु तथा (उनके अन्दर निवास करनेवाले) विश्वके प्राणी और सम्पूर्ण विश्व और 'धा'शब्द धात्री तथा माताका वाचक है। अतएव मैं ही महाविष्णु, विश्वके सम्पूर्ण प्राणी तथा समस्त विश्वकी धात्री माता ईश्वरी मूलप्रकृति हूँ।'

**त्वं च लक्ष्मी शिवा धात्री सावित्री च पृथक् पृथक्।**
**गोलोके च स्वयं राधा रासे रासेश्वरी सदा॥**

(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

'तुम अलग-अलग लक्ष्मी, दुर्गा, धात्री और सावित्री हो; गोलोकमें स्वयं राधा हो और रासमें सदा रासेश्वरी हो।'

**राधा देवी जगत्कर्त्री जगत्पालनतत्परा।**
**जगल्लयविधात्री च सर्वेशी सर्वसूतिका॥**

(बृहन्नारदीय पुराण)

'श्रीराधादेवी जगत्की रचना करनेवाली, उसके पालनमें तत्पर रहनेवाली और (प्रलयके समय) संहार करनेवाली हैं तथा सम्पूर्ण जगत्की प्रसविनी जननी हैं।'

**कृष्णेन आराध्यत इति राधा,**
**कृष्णं समाराधयति सदेति राधिका।**

(बृहन्नारदीय पुराण)

'श्रीकृष्ण इनकी आराधना करते हैं, इसलिये ये राधा हैं और ये सदा श्रीकृष्णकी समाराधना करती हैं, इसलिये 'राधिका' कहलाती हैं।'

**आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका।**

(स्कन्दपुराणीय भागवतमाहात्म्य २।११)

श्रीराधिका आत्माराम भगवान् श्रीकृष्णकी निश्चय ही आत्मा हैं।

अन्तमें हम ऐसी दिव्यशक्तिस्वरूपा, श्रीकृष्ण-अभिन्नरूपा-भगवती श्रीराधासे प्रार्थना करें—

**सदा राधिकानाम जिह्वाग्रतः स्यात्**
**सदा राधिकारूपमक्ष्यग्र आस्ताम्।**
**श्रुतौ राधिकाकीर्तिरन्तःस्वभावे**
**गुणा राधिकायाः श्रिया एतदीहे॥**

**जिह्वाके मम अग्रभागपर रहे विराजित राधा-नाम।**
**मेरी आँखोंके सम्मुख नित रहे राधिका-रूप ललाम॥**
**कानोंमें नित रहे गूँजती, राधाकीर्ति-कथा-अभिराम।**
**बना रहे श्रीश्रीराधाका गुण-गण-चिन्तन मन अविराम॥**

# शबरीजीके फलोंकी मिठास

( मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय )

गोस्वामीजीने शबरीका जो चित्र प्रस्तुत किया है, उससे ज्ञात होता है कि उनका जन्म एक ऐसी वनवासी जातिमें हुआ था, जिसे लोग हेयभरी दृष्टिसे देखते थे। वे मतंग ऋषिकी शिष्या थीं और उन्हींके आश्रमके समीप एक कुटिया बनाकर, गुरु-सेवामें रत रहकर अपना समय-यापन किया करती थीं।

एक दिन मतंग ऋषिके शरीर त्यागनेका समय आ गया। गुरुनिष्ठासे प्रेरित होकर शबरीजीने गुरुदेवसे यही कहा कि 'आपके बाद मैं भी अपना शरीर नहीं रखना चाहती, अतः आप मुझे शरीर-त्याग करनेकी आज्ञा दें।' इसपर मतंग ऋषिने कहा 'शबरी! अभी तुम्हारे शरीर त्यागनेका उचित अवसर नहीं आया है। तुम्हें आश्रममें रहकर प्रतीक्षा करनी है; क्योंकि साक्षात् ब्रह्म श्रीरामके रूपमें अवतरित होकर एक दिन तुम्हारी इस कुटियामें पधारेंगे और इस प्रकार तुम्हें वह सुअवसर मिलेगा कि तुम उनकी कृपाका अनुभव कर सको। फिर उसके पश्चात् तुम अपने इस शरीरका परित्यागकर धन्य हो जाओगी।'

शबरीजीमें गुरुभक्तिकी बड़ी अनोखी भावना है। गुरुजीने प्रभुके आगमनकी किसी तिथि या समय-सीमाका संकेत नहीं किया था। इसलिये शबरीजी नित्य प्रभुके आगमनकी प्रतीक्षा करती रहतीं। एक दिन वह विलक्षण अवसर आ ही गया, जब श्रीरामभद्र लक्ष्मणजीके साथ शबरीजीके आश्रममें पधारे। शबरीजी भगवान् रामको देखकर भाव-विह्वल हो गयीं। वे सोचने लगीं—धन्य हैं गुरुदेव! जिनके आशीर्वादसे मुझे आज प्रभुके दर्शन-लाभका अवसर मिला—

मुनि के बचन समुझि जियँ भाए॥

(रा०च०मा० ३।३४।६)

यह तो मेरी साधना या तपस्याका परिणाम हो ही नहीं सकता; क्योंकि मैं सर्वथा अयोग्य हूँ। प्रभु तो मेरे गुरुदेवके वचनोंकी रक्षा करनेके लिये ही मेरी कुटियामें पधारे हैं।

शबरीजी प्रभुको आश्रममें लाती हैं, आसनपर बैठाती हैं, उनके चरण पखारती हैं और तत्पश्चात् प्रभुके



सामने कन्द-मूल-फल लाकर परोस देती हैं। भगवान् राम बार-बार प्रशंसा करते हुए उन फलोंका रसास्वादन करते हैं।

भक्ति-साहित्यमें शबरीके फलोंकी मिठासका बार-बार वर्णन आता है। कुछ भक्तोंने तो यहाँतक कह दिया कि प्रभुने शबरीके जूठे फल खाये। यह भी भक्तोंकी एक भावना है। इसे मर्यादा और विवादका विषय न बनाकर उसके पीछे जो भावनात्मक संकेत है, उस दृष्टिसे विचार करना चाहिये, पर यह बात बिल्कुल स्पष्टरूपसे सामने आती है कि भगवान् रामको इन फलोंमें जैसा स्वाद मिला, वैसा स्वाद न तो पहले कहीं मिला था और न बादमें ही कहीं मिला।

प्रभु अपनी इस वनयात्रामें मुनियोंके आश्रममें भी गये। महर्षि भारद्वाज, महर्षि वाल्मीकि आदि ऋषियोंके आश्रममें भी आदर और स्नेहपूर्वक उन्हें कन्द-मूल-फल अर्पित किये गये। उन महापुरुषोंने जो फल अर्पित किये, वे भी दिव्य ही रहे होंगे। ऐसी स्थितिमें स्वाभाविक रूपसे यह पूछा जा सकता

है कि शबरीके फलोंमें ऐसी कौन-सी विशेषता थी कि प्रभुने उनमें जिस स्वादका अनुभव किया, अन्यत्र नहीं कर पाये?

कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि।

(रा०च०मा० ३।३४)

शबरीके फलोंमें 'रस' नहीं 'सुरस' है और केवल सुरस ही नहीं 'अति सुरस' है। इस 'अति सुरस' शब्दके द्वारा भक्तिकी अद्भुत व्याख्या की गयी है।

'गीतावली' में भी गोस्वामीजीने शबरीजीके फलोंकी विशेषताका वर्णन किया है और उन्होंने जिन शब्दोंमें इसका वर्णन किया है उसे पढ़कर तो यही लगता है कि 'प्रभुकी पूरी यात्रामें यही एकमात्र ऐसा स्थल है, जहाँ लगता है कि भगवान् राम बहुत भूखे हैं।' गोस्वामीजी कहते हैं कि—

केहि रुचि केहि छुधा सानुज माँगि माँगि प्रभु खात।

(गीतावली ३।६)

प्रभु! बार-बार शबरीसे 'और-और' कहकर फलोंकी याचना करते हैं। शबरीजीके फलमें ऐसी विशेषता है।

शबरीजीने भगवान् रामको जो फल अर्पित किये, उससे भी बड़ी मीठी बात जुड़ी हुई है। भगवान् राम तो मर्यादा और शिष्टताके साकार रूप हैं। इस प्रसंगमें वे बार-बार ऐसी बात करते हैं, जो मर्यादा या सीमासे हटकर प्रतीत होती है। प्रभुका यह व्यवहार लंकाविजयके बादके प्रसंगोंमें सामने आता है।

प्रभु अयोध्या लौटकर आते हैं। आज भी जब कोई प्रिय व्यक्ति लम्बे समयके बाद कहीं बाहरसे वापस लौटता है, तो लोग उसे भोजपर बुलाते हैं। भगवान् रामको भी कौसल्या, सुमित्रा अम्बा तथा कैकेयी अम्बाकी ओरसे ऐसा निमन्त्रण मिलता था। गुरु-माता अरुन्धती तथा कभी-कभी ससुरालसे भी ऐसा बुलावा आता था। प्रभु सबके यहाँ प्रेमपूर्वक पधारते थे और भोजन-ग्रहण करते थे, पर उसके पश्चात् प्रभुका जो व्यवहार होता था, वह बड़ा अटपटा-सा लगता है।

जब किसी व्यक्तिको भोजन करनेके लिये बुलाया जाता है तो शिष्ट व्यक्ति भोजन करनेके बाद यह कहना नहीं भूलते कि 'भोजन बड़ा स्वादिष्ट था', भले ही भोजन स्वादिष्ट लगता हो या न लगता हो। यही शिष्टाचार है।

भगवान् रामको जिन्होंने भोजनके लिये आमन्त्रित किया, वे सब एक-से-एक बढ़कर थे, यही प्रसंग ऐसा है, जहाँ भगवान् राम ऐसी बात कहते हैं, जो मर्यादासे थोड़ी हटकर लगती है। यदि आप किसीके घर भोजन करने जायँ और यदि वहाँ किसी दूसरे व्यक्तिका नाम लेकर कहने लगें कि 'उनके यहाँका भोजन बड़ा स्वादिष्ट था' तो यह बात बड़ी अटपटी-सी लगेगी; क्योंकि इसे सुनकर सामनेवाला व्यक्ति क्षुब्ध हो जायगा और सोचेगा कि 'उसका भोजन तो किसी कामका नहीं है।' भगवान् राम ठीक यही कार्य करते हैं।

'विनय-पत्रिका' में गोस्वामीजी इसका वर्णन करते हुए यही कहते हैं कि भगवान् राम जहाँ-जहाँ भोजन करनेके लिये जाते थे—

घर गुरुगृह प्रिय सदन सासुरे, भई जब जहँ पहुनाई।
तब तहँ कहि सबरीके फलनिकी रुचि माधुरी न पाई॥

(विनय-पत्रिका १६४।४)

बड़े-बड़े मुनियोंके जीवनमें भी रतिकी यह परिपक्वता नहीं दिखायी पड़ती, जो शबरीके जीवनमें विद्यमान थी। शबरीके फलोंमें न तो प्रदर्शनका छिलका था और न ही कामनाकी गुठली, बल्कि उनके फलोंमें प्रेमरसकी ऐसी मिठास और शीलकी ऐसी सुगन्ध थी, जो अन्यत्र कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती। इसीलिये प्रभु श्रीरामको शबरीके फलोंमें ही पूर्ण तृप्तिका बोध हुआ।

प्रभुको जिन शबरीके फलोंमें ऐसा अनुपम स्वाद मिला, वे शबरी स्वयं कितनी महान् रही होंगी, इसकी हम कल्पना ही कर सकते हैं।

[ प्रेषक—श्रीअमृतलालजी गुप्ता ]

साधकोंके प्रति—

# नाशवान् पदार्थोंसे प्रीति निरर्थक

( ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज )

यदि 'है' की प्राप्ति कठिन है तो क्या 'नहीं' की प्राप्ति सरल है? कर्तव्यपालन कठिन है तो क्या अकर्तव्यपालन सरल है? भगवान्‌का भजन-ध्यान कठिन है तो क्या झूठ, कपट, छल, चोरी सरल है? 'सत्' हीको प्राप्त नहीं कर सकते तो क्या असत्‌को प्राप्त करेंगे? यह कितनी विचित्र बात है कि सीधे एवं सुगम कार्यको तो कठिन मान रहे हैं, किंतु कठिन एवं अस्वाभाविक कार्यको सहज बतला रहे हैं? नाशवान्, जड़, अनित्य पदार्थोंकी प्राप्तिमें कौन-सी वीरता एवं उन्नति है? मरणधर्मा शरीर प्राप्त करके अमरता प्राप्त कर ले, नित्य सत्य परमतत्त्वका साक्षात्कार कर ले—यही वास्तविक शूरवीरता एवं मनुष्यता है।

लोग प्रायः विचार ही नहीं करते कि इन नाशवान् पदार्थोंका आश्रय कितने दिन टिकेगा? ये कबतक साथ देंगे? धन बैंकोंमें रह जायगा, पत्नी, पुत्र, मकान पीछे छूट जायँगे एवं हर शरीर चितामें जलकर राख हो जायगा। किंतु इनका संग्रह करनेमें जो झूठ, कपट, पाप किये हैं, वे अन्तःकरणमें जमा होकर साथ चलेंगे। फिर नरकोंमें भीषण यम-यातना प्राप्त होगी। अतएव समय रहते ही सावधान हो जाय। अन्तकाल आनेपर रोने-चिल्लाने अथवा पैर पटकनेसे कोई बचाव नहीं हो पायेगा। सब-के-सब चले जायँगे, सब साथ छोड़ देंगे—*'देखते ही छिप जायेंगे, ज्यों तारा परभात।'* जबतक ये दो नेत्र टिमटिमा रहे हैं, श्वासरूपी धौंकनी चल रही है, तभीतक लोग आशा लगाये बैठे हैं—

**सांस थकां सब आस करै, जब सांस गया सब काड़ो रे काड़ो।**
**धरती को धन बताय दियो, अब नाक समेत बाँधो रे गाढ़ो॥**
**अड़ोस-पड़ोसके आय खड़े, कोई न कहै अब राखो रे ठाड़ो।**
**मसानकी मंजिल पहुँचा दियो, अब रह गई जान, चलो गयो लाड़ो॥**

कैसा करुण दृश्य है। यही दशा सभीकी होनेवाली है। याद रखो, वह दिन प्रतिक्षण ही नजदीक आ रहा है। बहुतोंके लिये कफन पहलेसे ही तैयार है, वह कपड़ा अब बुना नहीं जायगा। जिससे अरथी बाँधी जायगी, वह मूँज भी तैयार है। बाँस भी तैयार है, अरथीको उठानेवाले भी अब नहीं जन्मेंगे। कन्धा देनेवाले भी तैयार बैठे हैं। जलानेकी जगह भी सुरक्षित पड़ी है। सब सामग्री तैयार है, केवल इस श्वासरूपी धौंकनीके बन्द होनेकी ही प्रतीक्षा कर रहे हैं। इधर निश्चिन्त बैठे हैं, सुखभोगका मनोराज्य करते हैं। लगता है, मरनेवालोंका समुदाय कोई दूसरा ही है, कोई दूसरा ही मोहल्ला है। हम थोड़े ही मरते हैं!

ये बातें प्रत्यक्ष हैं, प्रतिदिन ही अपने सामने लोगोंको मरते देख रहे हैं, किंतु अपनी मृत्युका ध्यान ही नहीं है। अपनी जानकारी, अपने ज्ञानका महान् अनादर कर रहे हैं। आखिर हम कर क्या रहे हैं? किधर जा रहे हैं? यदि आज ही हमारी मृत्यु हो जाय तो कौन हमारा साथ देगा? है कोई साथ देनेवाला?

**आराम के हैं सब संग-साथी, जब वक्त पड़ा तब कोई नहीं।**
**यहाँ मतलब के हैं लोग सभी, दुनियाँमें किसीका कोई नहीं॥**
**जब टिकट मिला है जानेका, तब डेरा किया है मसानोंमें।**
**वहाँ जलानेवाले लाखों थे, पर जलने वाला कोई नहीं॥**

कितनी विचित्र बात है। संसारमें कोई किसीका नहीं, सभी मतलबके साथी हैं। वक्त पड़नेपर केवल एक भगवान् ही काम आ सकते हैं, अन्य सभी धोखा दे देंगे। भगवान्‌से यदि प्रेम किया होता, उनके साथ पहचान की होती, उनको अपना बनाया होता तो आज रोना नहीं पड़ता। वे प्रभु हमारे हैं, अपने हैं, सर्वोपरि हैं एवं उनपर हमारा हक लगता है। उन प्रभुसे प्रेम करनेका, स्नेह करनेका, भक्ति करनेका, बोध प्राप्त करनेका इसी मानव-शरीरमें यह सुरदुर्लभ अवसर है।

यह अवसर हाथसे निकल गया यों फिर पश्चात्तापके सिवा और कुछ नहीं होगा। गोस्वामीजीने कहा है—

**सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।**
**कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ॥**

(रा०च०मा० ७।४३)

इसलिये इस शरीरके रहते-रहते ही अपने उद्धारके लिये प्रयत्न कर लेना चाहिये। ये विषय-भोग तो कुत्ते-गधोंकी योनियोंमें भी हो जायँगे, खाना-पीना, सोना, आराम आदि वहीं हो जायगा, किंतु भगवान्‌को प्राप्त करनेका अवसर और कहाँ है? वह तो इस मानवशरीरमें ही है। अतः अब चेत करो। आजसे ही यह दृढ़ प्रतिज्ञा कर लो कि जबतक अपना उद्धार नहीं हो जाता, भगवान्‌की प्राप्ति नहीं हो जाती, तबतक कहीं नहीं अटकेंगे, कहीं नहीं रुकेंगे, किसी भी अन्य कार्यमें मन नहीं फँसायेंगे एवं उस परमतत्त्वको प्राप्त करके ही विश्राम लेंगे। तभी मानवकी मानवता है। तभी मनुष्यजन्मकी सार्थकता है।

## सत्संग बड़ा है या तप

( श्रीगजाननजी पाण्डेय )

एक बार विश्वामित्रजी एवं वसिष्ठजीके बीच इस बातके लिये बहस हो गयी कि 'सत्संग बड़ा है या तप'।

विश्वामित्रजीकी राय थी कि मैंने तपके बलपर सिद्धियाँ प्राप्त की हैं, अतः तपका महत्त्व अधिक है, परंतु वसिष्ठजी उनके इस तर्कसे सहमत नहीं थे, उन्होंने कहा, 'सत्संग अधिक श्रेष्ठ है।'

अब दोनों इस बातका फैसला करानेके लिये ब्रह्माजीके पास गये और अपना प्रश्न उनके आगे रखा। ब्रह्माजीने कहा—'मैं इस समय सृष्टिके निर्माणमें लगा हूँ, अतः आप दोनों विष्णुजीके पास जायँ, वे अवश्य ही आपकी शंकाका समाधान कर देंगे।'

ब्रह्माजीके कथनानुसार दोनों मुनि जब विष्णुजीके पास पहुँचे तो भगवान् विष्णुने विचार किया कि 'यदि मैं तपको बड़ा बताता हूँ तो वसिष्ठजीके साथ अन्याय होगा और सत्संगको श्रेष्ठ कहता हूँ तो विश्वामित्रजी नाराज हो जायँगे। अतः उन्होंने टालते हुए कहा कि मैं संसारके पालनमें व्यस्त हूँ, अतः आप दोनों शंकरजीके पास जायँ।

शंकरजीने भी उन्हें यह कहते हुए लौटा दिया कि इस बातका निर्णय करना मेरे वशमें नहीं है। आप शेषनागजीके पास जायँ।

अब वे दोनों शेषनागजीके पास पहुँचे और अपनी शंकाका समाधान करनेका उनसे अनुरोध किया।

शेषनागजी कहने लगे, 'मैंने अपने सिरपर पृथ्वीका भार उठा रखा है, आप लोग यदि थोड़ी देरके लिये इस भारको वहन कर लें तो मुझे थोड़ा विश्राम प्राप्त होगा और तब मैं आपके प्रश्नका समाधान कर सकूँगा।'

इस बातपर, तपके अहंकारमें विश्वामित्रजीने कहा कि 'पृथ्वीको आप मुझे दीजिये। जब पृथ्वी नीचेकी ओर जाने लगी तो शेषनागजीने कहा कि सँभालिये, पृथ्वी रसातलको जा रही है।'

इसपर विश्वामित्रजीने कहा कि 'मैं अपने जीवनका तपोबल देता हूँ, पृथ्वी रुक जा, परंतु पृथ्वी नहीं रुकी।'

यह देखकर वसिष्ठजीने कहा, 'मैं आधी घड़ीके सत्संगका पुण्य देता हूँ।' वसिष्ठजीके इतना कहते ही पृथ्वी स्थिर हो गयी।'

अब शेषनागजीने पृथ्वीको पुनः अपने सिरपर ले लिया और उन दोनोंको जानेको कहा।

परंतु विश्वामित्रजीने कहा कि 'हमारे प्रश्नका उत्तर हमें नहीं मिला।' शेषनागजी कहने लगे कि 'फैसला तो हो गया कि पृथ्वी सारे जीवनका तपका बल लगानेसे भी स्थिर न हुई और आधी घड़ीके सत्संगसे ठहर गयी।' अर्थात् 'सत्संग, तपसे बड़ा होता है।'

श्रीरामचरितमानसमें भी आया है—

**बिनु सतसंग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥**

(रा०च०मा० १।२।७)

यानी सत्संगसे ही ज्ञान (विवेक)-की प्राप्ति होती है।

**एक घड़ी, आधी घड़ी, आधी में पुनि आध।**
**तुलसी चर्चा राम की, हरे कोटि अपराध॥**

सत्संगकी महिमाका वर्णन करनेवाले इस दोहेका भी भावार्थ यह है कि ईश्वरका नाम-स्मरण एवं आध्यात्मिक चर्चामें ही जीवका कल्याण निहित है।

इस प्रसंगका सार यह है कि सत्संगद्वारा प्राप्त ज्ञानको अपने जीवन एवं व्यवहारमें धारणकर हम अपने जीवनको सार्थक एवं सफल बना सकते हैं।

गुरुपूर्णिमापर विशेष—

# गुरुतत्त्वका रहस्य

( साधुवेषमें एक पथिक )

किसी शब्दका अर्थ तो बालक भी रट लेते हैं, पर उसका भाव विचारशील मानव ही समझ पाते हैं और भागवत-रहस्यकी अनुभूति सूक्ष्मदर्शी बुद्धिमानोंको ही होती है।

'गुरु' शब्दका भावार्थ बड़ी सरलतासे तब समझमें आता है, जब 'लघु' शब्दके अर्थका ध्यान रहता है। गुरु वह है, जिसमें लघुता नहीं होती है। जो किसीके द्वारा नहीं हिलता है—जिसे संसारके सुख-भोगकी कामनाएँ चंचल नहीं कर पाती हैं और जो सुखद-सुन्दर वस्तुपर विमुग्ध—लुब्ध नहीं होता है, वही गुरु है।

गुरु ज्ञानस्वरूप है। किसी गुरुमें देहभाव अथवा देहमें गुरुभावकी प्रतिष्ठा करना सत्यकी ओटमें असत्यकी उपासना है। अपने ज्ञानस्वरूपसे भगवान् ही परम गुरु हैं। वे ही दुखी प्राणियोंके कल्याणके लिये शुद्ध तथा निर्मल—पवित्र अन्तःकरणवाले व्यक्तियोंमें अपना ज्ञानस्वरूप प्रकाशित—अभिव्यक्त करते हैं। इस प्रकारके व्यक्तियोंको मानव-समाज महापुरुष, महात्मा और सन्त आदि नामसे समलंकृत करता है। यदि किसी सन्त, महात्मा, महापुरुष नामवाले व्यक्तिसे सद्ज्ञान—दिव्य-गुण अलग करके देखा जाय तो वह कदापि श्रद्धेय, पूज्य और माननीय न रह जायगा। इससे यह सिद्ध होता है कि आकृति—व्यक्ति पूज्य, सेव्य और उपास्य नहीं है; उसमें दैवीगुण तथा ज्ञानकी पूर्णता ही उपास्य, सेव्य और पूज्य है। दैवीगुण—पूर्णज्ञान अथवा निष्काम प्रेमकी उपासना—आराधना ही वास्तविक गुरुकी उपासना-आराधना है।

जब लघुका आश्रय लेकर—लघुपर निर्भर रहकर मानव स्थिर सुख तथा शान्ति नहीं प्राप्त कर पाता है और उसके परिवर्तन तथा विनाशको देखकर अनेक बार वियोग, हानि और अपमानसे दुखी हो लेता है, तब किसी गुरुकी शरणमें जाता है। अपने-आपमें ज्ञानकी कमीसे दुखी होकर ज्ञानकी पूर्णताके लिये संशयरहित होकर तथा अभिमानका त्यागकर गुरुके आगे रख देना ही गुरु-शरण है। लघुसे गुरु होनेके लिये ही गुरुशरणकी आवश्यकता है। गुरुका प्रेमी लघुका मोही नहीं रह जाता, गुरुकी आज्ञाका पालन करनेवाला छोटी-छोटी बातोंके पीछे हर्ष और शोक नहीं करता है। सांसारिक पदार्थ और सुखोपभोगकी वस्तुकी माँग लघु-आज्ञा है; तप, त्याग, प्रेम आदि दैवीगुणकी पूर्णता और दोषके नाशकी माँग गुरु-आज्ञा है।

जो ज्ञानस्वरूप गुरुकी आज्ञा-पालन करते हुए अपने बनाये दोषोंका नाश करता है तथा सद्गुणोंसे जीवन सुसज्जित करता है और गुणोंको भगवद्गत जानता है, वह गुरुमुख है—गुरुका उपासक है। इसके विपरीत गुरु-ज्ञानका अभिमानी होकर गुरुकी दयाका उपयोग अपने मनकी रुचि-पूर्तिमें करनेवाला मनमुख है। गुरुमुख मानव सत्यका योगी होकर परम शान्ति पाता है, मनमुख मानव सांसारिक सुखोंका भोगी होकर अन्तमें अशान्त और दुखी होता है।

ज्ञानस्वरूप गुरुका कभी नाश नहीं होता है। जिन नाम-रूपमें ज्ञानस्वरूप गुरुतत्त्वका दर्शन हो, उन्हींके निकट बैठकर व्यक्तित्वकी नहीं, गुरुतत्त्वकी उपासना करनी चाहिये। इस प्रकार गुरुकी उपासना करनेवाला शोक, मोह और दुःखके बन्धनसे मुक्त होकर स्वयं गुरु हो जाता है। गुरुके व्यक्तित्वका उपासक संसारमें बद्ध रहता है। श्रद्धायुक्त शुद्ध बुद्धिसे गुरुका दर्शन होता है। श्रद्धायुक्त विवेकसे गुरुप्रदत्त सम्पत्तिका ग्रहण होता है। श्रद्धायुक्त प्रीतिसे गुरु-सम्पत्तिकी रक्षा होती है। श्रद्धायुक्त त्यागसे गुरुके प्रति प्रगाढ़ प्रीति होती है और श्रद्धायुक्त तप-संयमसे गुरुके पथमें प्रगति होती है।.... गुरुमन्त्र परमानन्द परमात्मासे संयुक्त करता है। गुरुभक्ति लघुताकी सीमासे—बन्धनसे मुक्त कर देती है।

# रामसखा निषादराज

( प्रो० श्री एस०एन० सक्सेनाजी )

भारतीय संस्कृति तथा भारतीय मनीषामें श्रीराम तथा रामकथाका अप्रतिम स्थान है। किसी भी धर्म, सम्प्रदाय या पंथमें रामके आदर्शों एवं कृत्योंके सम्बन्धमें कहीं भी कोई मतवैभिन्य नहीं है। रामके *'बिप्र धेनु सुर संत हित'* मनुज अवतार लेनेका प्रमुख लक्ष्य राक्षसोंके उपद्रव, अत्याचारोंका समापन तथा देव-संस्कृतिकी पुनः स्थापना ही था। इसीलिये उनका वनगमन हुआ, जहाँ उन्हें केवल ऋषियों, मुनियोंका संसर्ग, आशीष ही नहीं वरन् जनसामान्यका सहयोग भी मिला। वानर, भालू, वन, पर्वत, पशु, पक्षी सभी रामके साथी बने। रामकथामें एक ओर यदि अहल्या और शबरी-जैसे नारीपात्रोंके प्रति करुणा एवं सम्मानकी भावना है तो दूसरी ओर निषादराज, सुग्रीव, विभीषण-जैसे पात्रोंको सखाका मान देकर राजाके दायित्वोंका निर्वहन भी है। रामके आदर्श अनिन्द्य हैं, अनिर्वचनीय हैं, अनुकरणीय हैं।

जब श्रीराम पिताकी आज्ञासे वनवासहेतु गये तब उन्हें तीन मित्र राजाओंसे भेंट करनेका अवसर मिला। सर्वप्रथम शृंगवेरपुरके राजा निषादराज, द्वितीय किष्किन्धाके राजा सुग्रीव तथा अन्तमें लंकापति रावणके लघु भ्राता विभीषण। श्रीरामने तीनों ही नरेशोंको मित्रका स्तर प्रदान किया था, परंतु वास्तवमें निष्कामभावकी मैत्री केवल निषादराजकी ही थी। सुग्रीव अपने राज्य तथा अपनी स्त्रीको पानेके हेतुसे रामके सहयोगी और मित्र बने थे। विभीषण अपने अग्रज रावणके आतंक एवं दुर्व्यवहारसे अत्यधिक पीड़ित थे। उसी क्षोभमें वे लंका छोड़कर श्रीरामकी शरणमें आये थे। इस प्रकार सुग्रीव और विभीषण दोनोंकी ही मित्रताका कुछ हेतु था, कारण था, उद्देश्य था और वे दोनों उपकृत भी हुए, परंतु निषादराजकी मित्रता निःस्वार्थ थी, निष्काम थी। उन्हें रामकी भक्तिके अतिरिक्त कोई अन्य प्रयोजन नहीं था। आदिकवि वाल्मीकिकृत रामायणके अयोध्याकाण्डके पचासवें सर्गमें उल्लेख है—

**तत्र राजा गुहो नाम रामस्यात्मसमः सखा।**
**निषादजात्यो बलवान् स्थपतिश्चेति विश्रुतः॥**

शृंगवेरपुरमें गुह नामका राजा राज्य करता था। वह रामचन्द्रजीका प्राणोंके समान प्रिय मित्र था। उसका जन्म निषाद-कुलमें हुआ था। वह शारीरिक शक्ति और सैनिक शक्तिकी दृष्टिसे भी बलवान् था तथा वहाँके निषादोंका सुविख्यात राजा था।

निषादराज गुह बचपनसे ही श्रीरामके सखा थे। जब श्रीराम आखेट करने वनमें जाते थे, तब ये भी उनके साथ रहते थे और राजकुमारोंकी सुविधाका पूरा प्रबन्ध करते थे। शिवपुराणमें गुरुद्रुह नामक भीलकी कथा आयी है। वह भील ही भगवान् शिवके अनुग्रहसे जन्मान्तरमें निषादराज गुह हुआ।

रामचरितमानसमें निषादराज सबसे पहले अयोध्याकाण्डमें तब सामने आते हैं, जब उन्हें यह सूचना मिलती है कि श्रीराम सीता एवं लक्ष्मणसहित वनमें आये हैं तो वे अपने परिजन, प्रियजनके साथ फल, मूल, भेंट आदि लेकर पहुँचे।

**यह सुधि गुहँ निषाद जब पाई। मुदित लिए प्रिय बंधु बुलाई॥**
**लिए फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हियँ हरषु अपारा॥**

रामसे मिलकर निषादराजने पूर्ण विनम्रता तथा प्रेमपूर्वक अपने उद्गार व्यक्तकर प्रभुको अपने नगर चलनेका अनुरोध किया और कहा पुरमें पधारकर मेरी प्रतिष्ठा बढ़ायें।

**देव धरनि धनु धामु तुम्हारा। मैं जनु नीचु सहित परिवारा॥**
**कृपा करिअ पुर धारिअ पाऊ। थापिअ जनु सबु लोगु सिहाऊ॥**

महर्षि वाल्मीकने भी निषादराज और श्रीरामके मिलनको बड़ी सुन्दरतासे व्यक्त किया है—

**भुजाभ्यां साधुवृत्ताभ्यां पीडयन् वाक्यमब्रवीत्।**
**दिष्ट्या त्वां गुह पश्यामि ह्यरोगं सह बान्धवैः।**
**अपि ते कुशलं राष्ट्रे मित्रेषु च वनेषु च॥**

श्रीरामने अपनी गोल-गोल भुजाओंसे गुहका अच्छी तरह आलिंगन करते हुए कहा—'गुह! सौभाग्यकी बात है कि मैं आज तुम्हें बन्धु-बान्धवोंके साथ स्वस्थ तथा सानन्द देख रहा हूँ। बताओ, तुम्हारे राज्यमें, मित्रोंके यहाँ तथा वनमें सर्वत्र कुशल तो है?'

गुहके द्वारा प्रस्तुत की गयी समस्त सामग्री विनम्रतापूर्वक लौटाकर कहा कि मैं पिताकी आज्ञासे वन प्रदेशमें वास कर रहा हूँ, अतः न तो मैं पुरमें, न ही नगरमें प्रवेश कर सकता

हूँ। गुहने श्रीराम, सीता और सुमन्त्र आदिके रात्रि-विश्रामकी व्यवस्था की तथा फल-मूल आदिका भोज कराया। निषादराजने श्रीरामके अनुसार ही शयनकी व्यवस्था की—

गुहँ सँवारि साँथरी डसाई। कुस किसलयमय मृदुल सुहाई॥

कुश और नये-नये कोमल पत्तोंसे युक्त कोमल सुन्दर साथरी सजाकर बिछायी। पवित्र, मीठे और ताजे फल, मूलका भोजन कराया। गोस्वामीजीने लक्ष्मणजी और गुहके रात्रिमें हुए वार्तालापको भी अद्भुत एवं आकर्षक शैलीमें व्यक्त किया है। लक्ष्मणजी और निषादराज दोनों ही श्रीरामजीकी वनवासकी इस स्थितिसे विषादमें हैं। दोनों ही गम्भीरतापूर्वक भगवान् श्रीरामके गुणोंका स्मरणकर व्यथित होते हैं।

अग्निपुराणमें भी उल्लेख है कि श्रीरामचन्द्रजीने चीर वस्त्र धारण कर रखा था। वहाँ निषादराज गुहने उनका पूजन, स्वागत-सत्कार किया। श्रीरघुनाथजीने इंगुदी वृक्षकी जड़के निकट विश्राम किया। श्रीलक्ष्मण और गुह दोनों रातभर पहरा देते रहे।

प्रातःकाल अयोध्या लौटते समय सुमन्त्रके रथ हाँकनेपर घोड़े भी रामको न देखकर हिनहिनाते हैं। यह देख निषादराज अपना सिर धुनते रह जाते हैं और कहते हैं कि जिनके वियोगमें पशुतक इतने व्याकुल हैं तो माता-पिता और प्रजाजनका क्या हाल होगा?

रथु हाँकेउ हय राम तन हेरि हेरि हिहिनाहिं।
देखि निषाद बिषादबस धुनहिं सीस पछिताहिं॥

सुमन्त्रको भेजकर श्रीराम गंगातटपर आये और गंगा पार करनेके लिये केवटको पुकारा। तुलसी मानसका केवट-राम-संवाद अत्यधिक प्रसिद्ध है। वाल्मीकि रामायणमें उल्लेख है कि श्रीरामने लक्ष्मण और निषादराजको आदेशित किया कि

अस्य वाहनसंयुक्तां कर्णग्राहवतीं शुभाम्।
सुप्रतारां दृढां तीर्थे शीघ्रं नावमुपाहर॥

तुम घाटपर शीघ्र ही एक ऐसी नाव ले आओ जो मजबूत होनेके साथ ही सुगमतापूर्वक खेनेयोग्य हो, उसमें डाँड़ लगा हुआ हो, कर्णधार बैठा हो, वह नाव देखनेमें भी सुन्दर हो।

अध्यात्मरामायणमें भी इसी प्रकार स्थापित है कि श्रीरामने निषादराजसे कहा—

उवाच शीघ्रं सुदृढां नावमानय मे सखे।
श्रुत्वा रामस्य वचनं निषादाधिपतिर्गुहः॥

मित्र, शीघ्र ही मेरे लिये एक सुदृढ़ नौका लाओ। 'निषादराजने नाव मँगायी, प्रिया सीताको नावमें चढ़ाकर स्वयं श्रीराम नावमें चढ़े। लक्ष्मणजीने धनुष-बाण रखकर प्रभुसे आज्ञा ली तथा नावमें चढ़े।' गंगाजीको पार उतरनेकी व्यवस्थाकर निषादराजने प्रभुसे विनय की कि मार्ग दिखानेके लिये उन्हें चार दिन साथ रहनेकी आज्ञा प्रदान करें, ताकि सुन्दर पर्णकुटी आदि बनायी जा सके। गुहका प्रेम और श्रद्धा देख प्रभुने अनुमति दी और सबसे विदा लेकर प्रस्थान किया। चित्रकूट-मार्गपर एक तापसकी भेंटका प्रकरण तुलसीदासके मानसमें है। तापसने भी निषादको रामभक्त जानकर छातीसे लगा लिया।

कीन्ह निषाद दंडवत तेही। मिलेउ मुदित लखि राम सनेही॥

महर्षि वाल्मीकिके द्वारा दर्शाये गये मार्गोंका अनुसरण करते हुए श्रीराम चित्रकूट पहुँचे। निषादराज वापस लौटे तो उन्होंने रथसहित मन्त्री सुमन्त्रको देखा। स्वयं निषादको भी भारी विषाद हुआ, उन्होंने सुमन्त्रजीको बहुत प्रकारसे समझाया और उन्हें विदाकर दुःखित मनसे घर लौटे।

निषादराजका तुलसीकृत रामचरितमानसमें दूसरी बार प्राकट्य तब होता है, जब भरतके सेना तथा परिजन प्रियजनसहित चित्रकूटकी ओर आगमनका समाचार उन्हें मिलता है—

समाचार सब सुने निषादा। हृदयँ बिचार करइ सबिषादा॥
कारन कवन भरत बन जाहीं। है कछु कपट भाउ मन माहीं॥
जौं पै जियँ न होति कुटिलाई। तौं कत लीन्ह संग कटकाई॥

निषादराजको संशय होता है कि भरत अपनी सेनाके साथ आकर सम्भवतः रामसे युद्धकर अकंटक राज्य प्राप्त करना चाहते हैं। आशंकासे अपनी सेनाका आह्वान करते हैं और कहते हैं कि सब सावधान हो जाओ, घाटोंको रोक लो। श्रीरामके लिये युद्ध करनेमें लाभ-ही-लाभ है। समरमें मरण, गंगातटपर मरण, रामकाजमें मरण तथा रामके भाई राजा भरतके हाथ हमारा मरण। वे सत्पुरुष हैं और हम अकिंचन। अतः युद्धके लिये तैयार हो जाओ। भरत और भरतकी सेनाको गंगाके पार नहीं जाने देना है—

होहु सँजोइल रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरै के ठाटा॥

सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ॥
समर मरउ पुनि सुरसरि तीरा। राम काजु छनभंगु सरीरा॥
भरत भाइ नृपु मैं जन नीचू। बड़ें भाग असि पाइअ मीचू॥

अपनी सेनाको तैयार और तत्पर देख निषादराज उत्साहित होते हैं तथा सेनाको उत्तेजित करनेके लिये ढोल बजानेको कहते हैं। उसी समय बाँयीं ओर छींक हुई। सगुन विचारनेवालोंने उसे शुभ संकेत माना तथा कहा कि भरतसे मिलाप होगा। लड़ाई नहीं होगी। तब वे भरतसे मिलनेका उपक्रम करने लगे। मुनीश्वर वसिष्ठको देखकर निषादराजने दण्डवत् प्रणाम किया। मुनिने उन्हें रामसखा मानकर आशीर्वाद दिया तथा भरतजीसे कहा कि ये रामसखा हैं। भरतने तत्काल अपना रथ त्यागकर निषादराजसे भेंट की, उन्हें लक्ष्मणकी भाँति प्रेमसे हृदयसे लगा लिया।

करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ।
मनहुँ लखन सन भेंट भइ प्रेमु न हृदयँ समाइ॥

गोस्वामी तुलसीदासने भरत और निषादराजकी इस भेंटका विस्तारसे तथा प्रमुदित होकर चित्रण किया है। गोस्वामीजी स्वयं ही इस प्रेमके रंगमें रँग गये हैं। निषादराजने भी इस प्रसंगमें अपने उद्‌गार भाव-विभोर होकर व्यक्त किये हैं। स्वयंको कपटी, कायर, कुमति, कुजाति कहा है, परंतु रामजीने उसे भुवनभूषण बना दिया है। श्रीशत्रुघ्नने भी उसी प्रीतिसे निषादराजको गले लगाया। रानियोंने सौ लाख वर्षतक सुखपूर्वक जीनेका आशीर्वाद दिया। निषादराजने भरतको वे सब स्थान दिखाये, जहाँ श्रीराम गये, रहे और सोये थे। उनके शयनके स्थान तथा बिस्तर यथा सांथरी आदि दिखाये। निषादराजने भरतको भी समझाया कि वे विषाद न करें, रामजी उन्हें प्यारे हैं और रामजीको वे प्यारे हैं। राम-सखाके वचन सुनकर भरतजीको भी धीरज आया। वे रामका स्मरण करते हुए डेरेपर चल दिये।

दूसरे दिन प्रातःकाल भरत सबको साथ लेकर निषादराजकी अगुआईमें बिना पदत्राणके पैदल ही श्रीरामसे मिलने चल पड़े।

कियउ निषादनाथु अगुआईं। मातु पालकीं सकल चलाईं॥
साथ बोलाइ भाइ लघु दीन्हा। बिप्रन्ह सहित गवनु गुर कीन्हा॥

रामजीका स्मरण करते भरतजी निषादराजके हाथका सहारा लेकर उसी मार्गसे चलते रहे, जिस मार्गसे रामजी गये थे। मन्दाकिनीमें सब लोगोंके साथ स्नान करनेके उपरान्त भरतजी निषादराज और लघु भ्राता रिपुदमनके साथ उस ओर चल दिये, जहाँ रामजी थे।

चले भरतु जहँ सिय रघुराई। साथ निषादनाथु लघु भाई॥

निषादराजका साथ इसलिये भी आवश्यक था कि उन्हें मार्गका ज्ञान था तथा रामसखा होनेके नाते भरतजीको और निषादराजको साथ देखकर प्रभु राम प्रसन्न ही होंगे।

वाल्मीकि-रामायणमें इस प्रसंगको तनिक भेदसे प्रस्तुत किया गया है। चित्रकूट पर्वत तथा वहाँ आस-पासमें घना जंगल था, अतः भरतजीने अपनी सेना तथा निषादराजको दिशानिर्देश दिये कि वे सब इस घनघोर वनमें रामके निवास-स्थानकी खोज करें। भरतजी स्वयं भी मन्त्रियों, पुरवासियों, गुरुजनों तथा ब्राह्मणोंके साथ सारे वनमें विचरण करेंगे। सैनिकोंने ऊँचे-ऊँचे पर्वत-शिखरों, वृक्षोंपर चढ़कर देखा कि कहीं आग जलनेसे धुआँ निकल रहा है। भरतजीको सूचित किया और रामके आश्रमका पता लगा लिया। श्रीभरतजी अपने भाई शत्रुघ्न तथा निषादराजके साथ शीघ्रतापूर्वक आश्रमकी ओर चल दिये।

राम-भरत-मिलनका प्रसंग तुलसी-मानसका सर्वाधिक मार्मिक एवं आकर्षक प्रसंग है। निषादराजको भी इस प्रसंगमें विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है। लक्ष्मणजी अपने लघुभ्राता शत्रुघ्नसे ललककर मिले, फिर निषादको भी गलेसे लगाया।

भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई। बहुरि निषादु लीन्ह उर लाई॥

इसी प्रकार ऋषि वसिष्ठने रामसखा निषादराजसे बरबस भेंट की, गले लगा लिया—***'रामसखा रिषि बरबस भेंटा'***।

श्रीभरतजीके सेनासहित वन-आगमनके समाचारको अध्यात्मरामायणमें भी लगभग तुलसीमानसके समान ही उल्लिखित किया गया है। गुहकी शंका फिर भरतका गुहसे मिलाप तथा जहाँ राम हैं, वहाँ ले चलनेका आग्रह-अनुग्रह आदि विस्तारपूर्वक सम्मिलित है।

चित्रकूटकी राजसभाकी समाप्तिके उपरान्त अयोध्या और मिथिलासे आये सभी प्रियजन, परिजन, ऋषि-मुनि, माताओंको विदाकर श्रीरामने निषादराजको भी ससम्मान

विदा किया, परंतु निषादका हृदय विषादसे भरा था।

**बिदा कीन्ह सनमानि निषादू। चलेउ हृदयँ बड़ बिरह बिषादू॥**

रामसखा निषादराजका रामकथामें तीसरी बार तब उल्लेख होता है जब रघुकुलतिलक भगवान् श्रीराम लंका-विजयके उपरान्त पुष्पक विमानसे भगवती सीता एवं रामानुज लक्ष्मणके साथ अवधकी ओर प्रस्थान करते हैं। प्रयाग पहुँचकर राम हनुमान्‌को निर्देश देते हैं कि शीघ्र अयोध्या पहुँचकर भरतको हमारे आगमनकी सूचना दो और मार्गमें शृंगवेरपुरमें हमारे सखा निषादराजको भी सूचित कर देना।

**शृङ्गवेरपुरं प्राप्य गुहं गहनगोचरम्।**
**निषादाधिपतिं ब्रूहि कुशलं वचनान्मम॥**

(श्रीमहावाल्मीकीय रामायण)

**जानीहि कुशली कश्चिज्जनो नृपतिमन्दिरे।**
**शृङ्गवेरपुरं गत्वा ब्रूहि मित्रं गुहं मम॥**

(अध्यात्मरामायण)

पवनसुत हनुमान् तुरन्त चल दिये। निषादराजको जैसे ही ज्ञात हुआ कि प्रभु आये हैं, वह 'नाव-नाव' कहकर लोगोंको बुलाने लगा।

**इहाँ निषाद सुना प्रभु आए। नाव नाव कहँ लोग बोलाए॥**

श्रीरामका गंगातटपर उतरना सुनकर निषादराज गुह प्रेमातुर होकर दौड़े तथा परमानन्दको प्राप्त हो प्रभुके पास आये। प्रभुको माता सीताके साथ देखकर अत्यधिक अभिभूत हो साष्टांग दण्डवत् किया। अपने शरीरकी सुध-बुध भी खो बैठे। भगवान्‌ने उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया।

इस प्रसंगके बाद कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। श्रीनिषादराज भगवान् श्रीरामके साथ पुष्पक विमानमें बैठकर या स्वयंके किसी साधनसे राज्याभिषेक देखनेके हेतुसे अयोध्या गये, परंतु उत्तरकाण्डमें सुग्रीव आदिकी विदाके उपरान्त बड़े सुन्दर एवं भावप्रणव शब्दोंमें भगवान् श्रीरामने निषादराजको विदा किया है। उन्हें भोजन, प्रसाद, वसन आदि भेंटकर आग्रह किया है कि तुम शृंगवेरपुर जाओ, मेरा स्मरण करो तथा आते-जाते रहो। भरतके समान ही तुम मेरे भाई हो, मेरे सखा हो, मित्र हो। इन वचनोंको सुनकर नेत्रोंमें जल भरकर निषादराज प्रभुके चरणोंमें गिर गये। प्रभु रामके चरणकमलको हृदयमें धारणकर शृंगवेरपुर गये तथा सारा वृत्तान्त अपने परिजनोंको सुनाया।

**पुनि कृपाल लियो बोलि निषादा। दीन्हे भूषन बसन प्रसादा॥**
**जाहु भवन मम सुमिरन करेहू। मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू॥**
**तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता॥**
**बचन सुनत उपजा सुख भारी। परेउ चरन भरि लोचन बारी॥**
**चरन नलिन उर धरि गृह आवा। प्रभु सुभाउ परिजनन्हि सुनावा॥**

इसी प्रकारकी मार्मिक विदाईका वर्णन अध्यात्म-रामायणमें भी है। श्रीराम कहते हैं, 'मित्र! अब तुम अपने परम रमणीय ग्राम शृंगबेरपुर जाओ। वहाँ मेरा चिन्तन करते हुए अपने शुभ कर्मोंसे प्राप्त हुए भोगोंको भोगो। इसमें सन्देह नहीं, अन्तमें तुम मेरा ही सारूप्य प्राप्त करोगे।' ऐसा कह भगवान् रामने उसे दिव्य आभूषण, बहुत-सा राज्य और तत्त्वज्ञानका उपदेश दिया। फिर रघुनाथजीसे आलिंगित होकर गुह अपने घरको गया।'

अन्ततः यही मान्य किया जायगा कि रामसखा निषादराजकी रामके प्रति भक्ति, प्रेम, समर्पण तथा प्रतिबद्धता पूर्णतः निष्काम थी। भक्तमालमें तो यहाँतक उल्लेख है कि चित्रकूटसे लौटकर निषादने आँखोंपर पट्टी बाँध ली थी। चौदह वर्षतक निषादराज व्यग्र रहे, विलाप करते रहे। जब उनकी आँखोंमें आँसू नहीं रह गये, तब आँखोंसे खून गिरने लगा। भक्तमाल (भक्तिरसबोधिनी)-की ये पंक्तियाँ प्रमाण हैं—

**दारुण वियोग अकुलात दृग अश्रुपात,**
**पीछे लोहू जात वह सके कौन गाइकै।**
**रहे नैन मूँदि रघुनाथ बिन देखौं कहा,**
**अहा प्रेम रीति रही मेरे हिये छाइकै।**
**चौदह बरस पीछे आये रघुनाथ जबै,**
**साथ के जे भील कहैं आये प्रभु देखिये।**
**बोल्यो 'अब पाऊँ कहाँ होति न प्रतीति क्यों हूँ,**
**प्रीति करि मिले राम कही मोको पेखिये।**
**परसि पिछाने लपटाने सुखसागर,**
**समाने प्राण पाये मानो भाग भाल लेखिये।**
**प्रेम की जू बात क्यों हूँ वाणी में समात नाहीं,**
**अति अकुलात कहो कैसे कै विशेखिये।**

धन्य हैं निषादराज और धन्य है उनकी सख्य भक्ति!

# साधकोपयोगी उपदेशामृत

[ व्रजभाषामें ]

( गोलोकवासी सन्त श्रीगयाप्रसादजी महाराज )

## साधक प्रबोध

श्रीगुरुजीके समीप रहकैं व्रजवास करनौ। गुरुजन सुलभ हैं ही। उनकी आज्ञानुसार साधन, नियमित दिनचर्या बनायकैं करनौ।

श्रीबिहारीजीकौ नित्य दर्शन करैं। इनकी स्मृति निरन्तर बनी रहै। कभी भूले नहीं, बस।

## महज्जन महिमा

श्रीठाकुरजीकी सबसौं बड़ी कृपा है संत श्रीसद्‌गुरुकी प्राप्ति। भगवान् स्वयं अपनौ प्रेम नहीं दे सकै। प्रेम तौ इनके प्रेमीनकी वस्तु है। उनसौं ही श्रीभगवत्प्रेम प्राप्त करनौ होयगौ।

## वैराग्य

कृपा करकैं श्रीभगवान्‌ने तुम्हैं संसार प्रपञ्चसौं निकार लियौ है। अब पुनः काहू प्रपञ्चमें न फँसे। स्त्री जाति मात्रसौं सर्वथा दूर रहैं।

## निष्कामता

भजन निष्काम भावसे ही हो। श्रीभगवत्प्रेमके लिये ही निरन्तर भजन करनौ यही निष्कामता है। २४ घण्टे इनकौ चिन्तन।

## भगवत्कृपा

भगवान् तीन बातनमें स्वतन्त्र हैं—काहू जीवकूँ अपनाय लेवेमें, दर्शन देवेमें और कृपा करवेमें।

श्रीभगवत्कृपाके लिये कोई नियम नहीं है, कब कहाँ कौनपै होय? जहाँ हृदय इनसौं जुड़ौ कि कृपा भई।

रीझत राम सनेह निसोते।

## भजन विधि

**प्रश्न**—भजनकी विधि कहा है?

**उत्तर**—निष्काम भावसौं केवल श्रीभगवत्प्राप्तिके लिये ही निरन्तर श्रीभगवद्‌भजनमें लगनौ तथा श्रीभगवत्प्रेम प्राप्तिके अतिरिक्त अन्य इच्छा, कामना मनमें न उठन देनौ। याके साथ-साथ श्रीगुरुभक्ति, संतनमें भाव, पूर्वकालमें भये प्रेमी भक्त श्रीभरतजी, श्रीप्रह्लादजी, श्रीगोपीजन, श्रीचैतन्यदेवजी, श्रीमीराजी, श्रीतुलसीदासजी, श्रीसूरदासजी, श्रीकबीरदासजी आदि प्रेमी भक्तनके चरित्रनकूँ बड़े ध्यानसौं पढ़नौ तथा वैसी ही रहनी-सहनी करनी, आचरण बनानौ। यही भजनकी विधि है।

यही भजन श्रीप्रह्लादजी, श्रीभरतजी आदि करते रहे, किन्तु आज वैसौ फल नहीं मिल रह्यौ है याकौ कारण? उन प्रेमी महानुभावनकी-सी रहनी हमारी नहीं है।

## ठीक भजनकी पहिचान

**प्रश्न**—ठीक भजन बन रह्यौ है याकी पहचान कहा है?

**उत्तर**—स्वभावमें दैन्य भाव एवं सरलताकी वृद्धि, समस्त संतनमें भावकी उत्पत्ति, संसारसौं वैराग्य और इनके प्रेम-प्राप्तिकी लालसा दिन-प्रतिदिन बढ़ती रहे है तब समझो कि भजन ठीक बन रह्यौ है।

## २४ घण्टे इनके लिये, हर क्रिया इनके लिये

चौबीस घण्टे केवल भगवान्‌के लिये ही रहें। कोई क्षण व्यर्थ न गवावें। सोनौ, जागनौ, उठनौ, बैठनौ, भोजन करनौ तथा सांसारिक व्यवहार एवं शरीरकी सँभार, औषधि आदि लेनौ हू इनके लिये ही हों ऐसौ जीवन बनावैं।

## श्रीभगवत्कृपाकौ स्वरूप

श्रीभगवत्कृपा है चुकी है। श्रीसद्‌गुरु प्राप्त हैं, व्रजवास है ही। भजनके लिये पूरौ अवकाश एवं सादगीसौं जीवन-निर्वाहकी समस्त सुविधाएँ श्रीप्राणनाथने जुटा दी हैं। अब थोरौ प्रयास और करौ तौ काम बन जावैगौ।

## कामनाराहित्य

सावधान कोई कामना न बन जाय।

## रहनी

सादगीसौं जीवन बितावें और द्रव्य पासमें न राखे।

[संकलन—बाबा श्रीरामदासजी]

# विपत्तियाँ एवं मुसकराहट

( ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज, अखिलभारतवर्षीय धर्मसंघ )

विपत्ति अर्थात् प्रतिकूलता अर्थात् हमारे मनके विपरीत अवस्था (जो हम चाहते हैं, वह नहीं हो रहा, बल्कि जो हम नहीं चाहते, वही हो रहा है) है। शास्त्र तथा सन्त महापुरुष कहते हैं कि भगवान् वह नहीं करते जो हमें अच्छा लगता है, अपितु भगवान् वह करते हैं, जो हमारे लिये अच्छा होता है। इस बातको (जीवन-दर्शन-सूत्र) केवल पढ़कर खुश होनेसे काम न चलेगा, इसकी प्रशंसा करनेसे भी काम नहीं चलेगा, जबतक सच्चे अर्थोंमें ये बात हमारे मनमें, रोम-रोममें, व्यवहारमें, विश्वासमें न बस जाय, तबतक बात न बनेगी। भला, औषधिको जाननेमात्रसे रोग जा सकता है क्या? औषधिकी प्रशंसासे भी रोग जा सकेगा क्या? नहीं न। पता है रोग कैसे जायगा? रोग जायगा कुपथ्यका त्याग करके विश्वासपूर्वक नियमित औषधि-सेवन करनेसे।

एक माँ अपने दस वर्षके बालकको डॉक्टरके पास लेकर जाती है, डॉक्टर साहब! मेरे बेटेकी पीठपर फोड़ा है। डॉक्टर चेक करके कहता है—इसको चीरा लगाना (ऑपरेशन करना) पड़ेगा। बालक अपना हित-अहित नहीं जानता। ममतामयी माँ अपने पुत्रके दीर्घकालिक हितको ध्यानमें रखकर कहती है—ठीक है। बालकके रोते रहनेपर भी उसके शरीरको काटा जा रहा है, वह 'माँ-माँ' कहकर छटपटा रहा है, परंतु माँ बिना करुणा दिखाये उसके हाथ पकड़कर कठोरताका-सा व्यवहार करती है। वह बालक आज दर्दसे तो पीड़ित है ही, उससे भी अधिक पीड़ित है, माँके इस अनपेक्षित अनचाहे विपरीत व्यवहारसे; क्योंकि उसने तो अपनी छोटी-सी परेशानीपर भी इसी माताको बिलखते हुए देखा है और आज वही माँ मेरा खून देखकर, मुझे दर्दसे चिल्लाता-कराहता-रोता देखकर भी ये दया क्यों नहीं करती है!

सज्जनो! ये प्रसंग सत्य भी है तथा काल्पनिक भी। सत्य इसलिये है कि कुछ होंगे जिनको ऐसी स्थितिका सामना हुआ होगा। मेरे साथ ये घटना घटी है, मेरी पीठपर आज भी वह निशान है। काल्पनिक उनको लगेगी, जिन्होंने इसका अनुभव नहीं किया। ठीक वैसे ही जब कभी हमें लगने लगे कि ये अच्छा नहीं हो रहा, ऐसा नहीं होना चाहिये। तब उस अपमानकी पीड़ाको, पराजयकी पीड़ाको स्वजनके द्वारा किये गये विश्वासघातकी पीड़ाको पी जाना, आँसू मत गिराना। यह सोचकर मुसकराना कि मेरे प्रभुका प्रत्येक विधान मंगलमय है तो निश्चित ही इसमें भी कोई-न-कोई मेरा हित निहित है।

श्रीनारदजी महाराज भगवान्‌के अनन्य भक्त हैं। एक बार श्रीनारदजीको गर्व हो गया कि मैंने कामको जीत लिया। हर्षातिरेकमें आत्मप्रशंसा सुननेकी चाहमें, अधिकाधिक यशकी चाहमें श्रीब्रह्माजीको आत्मश्लाघापूर्ण वृत्तान्त सुनाया। ब्रह्माजी महाराज मन-ही-मन हँसे, परंतु नारदजी तो शिवजीके पास पहुँच गये तथा पूरी काम-विजयकी कथा सुना दी। शंकरजी गम्भीर होकर बोले—हे देवर्षे! जो हुआ बहुत अच्छा हुआ, पर अब किसीको ये बात नहीं बताना, विशेषकर श्रीहरिको तो भूलकर भी न बता देना। श्रीनारदजीका मन विपरीत दिशामें चलने लगा—

**जाको प्रभु दारुण दुःख देही। ताकी मति पहले हर लेही॥**

वे सोचते हैं कि पिताजी (ब्रह्माजी) स्वयं कामको न जीत सके, अतः मेरी विजयपर उनको खुशी नहीं हुई। महादेवजी भी कामको जला तो सकते हैं, परंतु जीत नहीं सकते, अतः मेरी प्रशंसा उनको भी न पची। इसीलिये मुझे रोक रहे हैं कि नारायणको न बताना। भला मैं अपने आराध्य, अपने शुभचिन्तक श्रीहरिको यह शुभ समाचार दिये बिना कैसे रह सकता हूँ और श्रीनारदजी महाराजने वैकुण्ठमें प्रवेश करते ही नमन करके, बैठनेतककी प्रतीक्षा किये बिना समग्र प्रसंग यथावत् सुना दिया तथा ब्रह्माजी एवं शिवजीके साथ जो बात हुई, वह भी बता दी। नारायण गम्भीर हैं, सब सुनकर बोले—देवर्षे! आपके तपका प्रभाव है—

**तुम्हरे सुमिरन तें मिटहिं मोह मार मद मान॥**

(रा०च०मा० १।१२८)

नारदजीने कहा भगवन्—

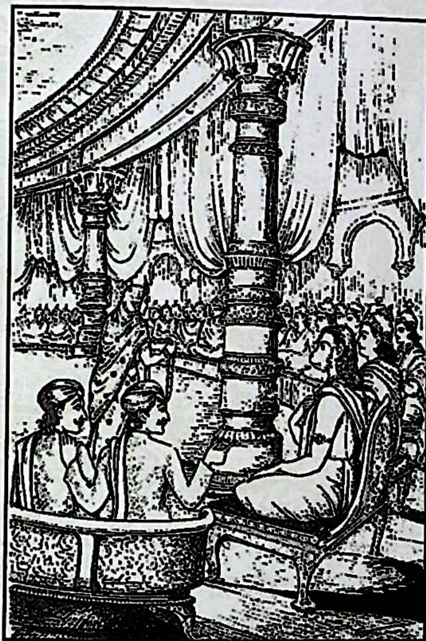
**जेहि बिधि नाथ होइ हित मोरा। करहु सो बेगि दास मैं तोरा॥**

श्रीहरि तुरन्त बोले—

**जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार।**
**सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार॥**

(रा०च०मा० १।१३२)

आगेका परिणाम आप सब जानते हैं कि नारदजीने क्या चाहा, परंतु मिला क्या। विवाहकी कामनासे दैहिक सुन्दरता चाहनेवाले नारदको भगवान्‌से मिला



वानर-जैसा मुख। तब क्या विवाहकी इच्छा होना या विवाह करना पाप है? क्यों किया भगवान्‌ने ऐसा—

**कुपथ माग रुज ब्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी॥**

श्रीनारदजी मुनि हैं, योगी हैं, अतः योगीके चित्तमें वासनाका ज्वर आये तो समझो कि बीमार है और उसकी दवा है—उपासना। जबकि नारद भोग-साधन चाहते हैं। भगवान् तो जीवमात्रका हित चाहते ही हैं। हितके लिये ही कभी प्रतिकूलताका ताप, कभी आँसुओंकी बरसात, कभी अपमान, कभी पराजय, कभी हानि आदिके द्वारा चित्तका शोधन करते हैं। हमें सर्वदा उनके प्रत्येक विधानपर भरोसा करके, मुसकराते हुए जीवन जीना चाहिये।

**दुःख औषधि विष विषय की, प्रीत सहित जो सेव।**
**हरि इच्छा हिय हरष करि, बदलत क्षण में देव॥**

दुःख तो विषय-वासनारूपी विषकी (रोगकी) अचूक औषधि है। लाभ तब ही करेगी, जब व्यक्ति कुपथ्यका त्याग करके पथ्यका सेवन करता हुआ प्रेमपूर्वक इसका उपयोग करेगा। प्रत्येक परिस्थितिको भगवान्‌की इच्छा मानते हुए हृदयमें हर्ष और उत्साहका अनुभव करके भगवान्‌का स्मरण करनेसे क्षणमात्रमें भाग्य (दैव)-तक बदल सकता है।

**पथ्य तथा कुपथ्य क्या है?**—कुपथ्य है, विषय-वासनाकी व्याधिका उदय होनेपर उसकी पूर्तिकी दिशामें प्रयास करना। जैसे—कामका उदय हुआ तो स्त्रीसंगके प्रति लालसा करना, लोभ-वृत्तिका उदय हुआ तो धनार्जनकी दिशामें सतत लगे रहना। पथ्य है, वासनाका उदय होते ही उससे दूर होनेके साथ भगवान्‌की उपासनामें चित्तको लगाना; क्योंकि उपासना ही है, जो जीवको वासनाके दलदलसे बचा सकती है। लोभ-वृत्तिका उदय होनेपर दान-प्रवृत्ति तथा त्यागका मार्ग चुनना आदि।

मनुष्यका सर्वाधिक मौलिक अधिकार तथा स्वाभाविक विशेषता है, उसका मुसकराना। सृष्टिमें मनुष्यके अतिरिक्त कोई मुसकरा नहीं सकता। पशु, पक्षी, कीट, पतंग, कूकर, सूकर, वानर, भालू, हाथी, सिंह आदि कोई भी मुसकरा नहीं सकता। कदाचित् कोई कहे कि मुसकराते तो हैं, परंतु उनका मुसकराना समझमें नहीं आता, तो ठीक है। मान लेते हैं, परंतु ये भी सच है कि जीव-जन्तु यदि मुसकराते होंगे तो केवल सुखमें, अनुकूलतामें ही मुसकराते होंगे; प्रतिकूलतामें कभी नहीं। परंतु केवल मनुष्य ही ऐसा है, जो प्रतिकूलतामें, विपत्तिमें भी मुसकरा सकता है। अतः मेरे प्यारे भाई-बहनो! आप अपनी इस स्वाभाविक साधनाको कभी न छोड़ें। **'प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते'**। गीताजीमें भगवान् कहते हैं कि प्रसन्नतामें सभी दुःख मिट जाते हैं। आप देख लीजिये काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, दम्भ, पाखण्डका अँधेरा तबतक ही है, जबतक मुसकराहट—प्रसन्नताका प्रकाश नहीं खिला है।

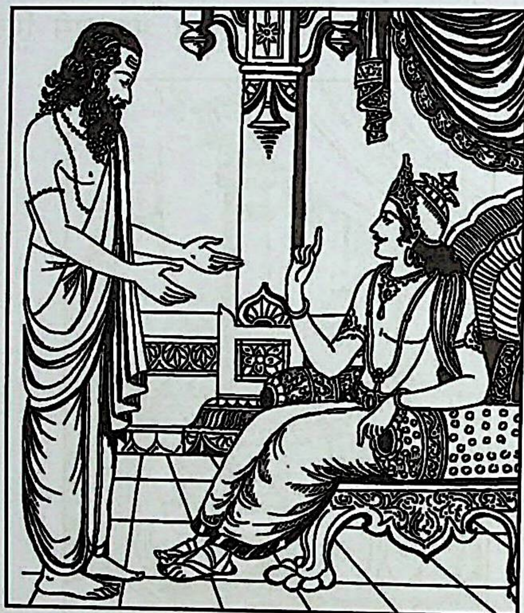
# आत्मघाती है बदलेकी भावना

( श्रीसीतारामजी गुप्ता )

धम्मपदमें कहा गया है, **'न हि वैरेण वैराणि शाम्यन्तीह कदाचन'** अर्थात् इस संसारमें वैर-से-वैर कभी शान्त नहीं होता। इसी प्रकार अन्य नकारात्मक वृत्तियोंसे नकारात्मकताका समापन नहीं किया जा सकता। वैर-से-वैर, क्रोध-से-क्रोध, घृणा-से-घृणा अथवा हिंसा-से-हिंसाको मिटाना असम्भव है। हाँ, इस गलत प्रयासमें हम अपने स्तरसे अवश्य गिर जाते हैं। बुराई-को-बुराईसे जीतना असम्भव है फिर हम क्यों बुराईको जीतनेके लिये बुराईका सहारा लें? बदलेकी भावना या बदला लेनेकी इच्छा स्वयंमें एक हानिकारक तत्त्व है। जब भी हम इस प्रकारका कोई निर्णय लेते हैं तो हमारी सारी ऊर्जा उसी ओर चैनेलाइज हो जाती है। जबतक यह सिलसिला चलता रहता है, हम अपनी ऊर्जाका अपेक्षित सकारात्मक दिशामें प्रयोग कर ही नहीं पाते। बदलेकी भावना या बदला लेनेकी इच्छा हमारे आत्मिक एवं भौतिक विकासमें बहुत बड़ी बाधा बन जाती है।

महाभारतके कई पात्र इसी मनोग्रन्थिके शिकार हैं। महाभारतमें जो महाभारत मचा, उसके मूलमें ऐसी ही मनोग्रन्थियाँ हैं। महाभारतमें महर्षि भरद्वाजके पुत्र द्रोणाचार्यकी कथा मिलती है, जिन्होंने कौरव और पाण्डव राजकुमारोंको धनुर्विद्याका प्रशिक्षण दिया और अन्तमें कुरुक्षेत्रके युद्धमें धृष्टद्युम्नके हाथों मारे गये। आश्चर्यका विषय द्रोणाचार्यकी मृत्यु नहीं, अपितु अजेय योद्धा महारथी द्रोणाचार्य अपने आश्रमके सहपाठी द्रुपदके पुत्र धृष्टद्युम्नके हाथों क्यों मारे गये—यह अवश्य विचारणीय है। भरद्वाज-आश्रममें आचार्य द्रोण और पांचाल-नरेशके पुत्र द्रुपद साथ-साथ शिक्षा ग्रहण करते थे। दोनों अच्छे मित्र बन गये। एक दिन द्रुपदने द्रोणसे कहा कि जब वह पांचाल देशका राजा बनेगा तो आधा राज्य उसे दे देगा।

शिक्षा पूर्ण होनेपर दोनोंने अपनी-अपनी राह ली। द्रोणका विवाह हुआ और उसका एक पुत्र हुआ, जिसका नाम रखा गया अश्वत्थामा। द्रोण अपने परिवारको बहुत प्यार करते थे और उन्हें सुखपूर्वक रखना चाहते थे, लेकिन यह सम्भव नहीं था; क्योंकि द्रोण बहुत गरीब थे। कालान्तरमें द्रुपद पांचाल राज्यके सिंहासनपर बैठे। यह जानकर द्रोण बड़े प्रसन्न हुए और वे द्रुपदसे मिलने पांचाल जा पहुँचे। वहाँ पहुँचनेपर आधा राज्य अथवा सहायता तो दूर अपितु द्रुपदके हाथों



उन्हें अपमानित और लज्जित होना पड़ा। द्रुपदने कहा कि मित्रता बराबरवालोंमें होती है। अपमानित द्रोण खूनका घूँट पीकर रह गये। उनके मनमें प्रतिशोधकी ज्वाला भड़क उठी।

बादमें आचार्य द्रोण हस्तिनापुरमें राजकुमारोंको धनुर्विद्या सिखाने लगे और शिक्षा पूरी होनेके उपरान्त गुरु-दक्षिणाके रूपमें पांचाल-नरेश द्रुपदको कैद करके लानेको कहा। अर्जुनने द्रुपदको पराजित करके उसे मन्त्रीसहित कैद कर लिया और आचार्य द्रोणके सम्मुख लाकर खड़ा कर दिया। द्रोणने यद्यपि उसे किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचायी और अपना प्रतिशोध पूरा मानकर द्रुपदको सम्मानके साथ विदा कर दिया, लेकिन द्रुपद इस अपमानको सहन न कर सके। वे घृणासे भर उठे और बदलेकी आगमें झुलसने लगे। द्रुपदने अपने जीवनका एकमात्र लक्ष्य बना लिया द्रोणसे बदला लेना।

द्रुपदने कठोर तप और व्रत किया ताकि उसके ऐसा शक्तिशाली पुत्र हो, जो द्रोणका वध कर सके। उनकी



कामना पूर्ण हुई। उनके पुत्र धृष्टद्युम्नने कुरुक्षेत्रके युद्धमें आचार्य द्रोणका वध किया।

क्या द्रोणकी इस प्रकारकी मृत्युके लिये द्रोण स्वयं उत्तरदायी नहीं? क्या इसके मूलमें द्रोणकी लालसा, असहिष्णुता एवं बदलेकी भावना विद्यमान नहीं? माना द्रुपदने उत्साहातिरेक, आवेश अथवा बड़प्पनकी भावनासे आधा राज्य देनेका आश्वासन दे डाला, लेकिन क्या मित्रोंके बीच इस प्रकारका बँटवारा व्यावहारिक है? क्या भावावेशमें किया गया यह निर्णय अस्वाभाविक नहीं प्रतीत होता? अपने परिवारके लिये सुख-सुविधाएँ जुटानेकी कामनामें एक राजाके सामने मित्रताका वास्ता देकर क्या द्रोणने अपनी गरिमाको ठेस नहीं पहुँचायी? जब एक राजाने गरीब ब्राह्मणको मित्र स्वीकार करनेसे मना कर दिया तो वह अपमानसे भर उठा। आखिर क्यों?

आज दुनियामें अनेक लोग दूसरोंको सब्ज-बाग दिखाते हैं और असंख्य लोग उनके झाँसेमें आकर लुट-पिटकर चुपचाप बैठ जाते हैं। यह उनके लोभका ही तो परिणाम होता है। बिना कमाये या कम मेहनत करके धनी होनेकी आकांक्षा ही तो होती है। बिना कमाये या कम मेहनत करके सुखपूर्वक जीनेकी चाह होती है। यही तो द्रोणकी भी चाहत थी। पर क्या यह स्वाभाविक है? क्या यह उचित है? क्या इससे मनुष्यका स्वाभाविक विकास सम्भव है? इस प्रकारकी असंख्य अस्वाभाविक कामनाएँ, लालसाएँ एवं वासनाएँ ही मनुष्यके पतनका कारण बनती हैं, इसमें सन्देह नहीं। फिर बदलेकी भावना आगमें घीका काम करती है। भीष्म पितामहने उपर्युक्त घटना सुनकर आचार्य द्रोणको अपने धनुषकी डोरी उतार डालनेकी सलाह दी थी और कौरव राजलक्ष्मीका यथेच्छ भोग करनेको कहा था, परंतु आचार्य ऐसा न कर सके और उनका यह क्रोध भी महाभारत नामक महासमरका एक कारण बना।

अपने पिता द्रोणकी मृत्युसे आहत अश्वत्थामाने




धर्मविरुद्ध रात्रिमें सोते हुए धृष्टद्युम्नको पैरोंसे कुचलकर मार डाला और साथ ही द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंका वध भी कर दिया। इसके मूलमें थी द्रोणकी लिप्सा। द्रोणकी आधे राज्यको पाने अथवा कुछ सहायताकी लिप्सा। कामनापूर्तिमें बाधासे उत्पन्न अपमानबोध और घृणासे उत्पन्न प्रतिशोधकी भावना, प्रतिशोधकी पूर्तिपर दूसरे पक्षकी घृणा और बदलेकी भावनाने न केवल द्रुपदका अपितु स्वयं द्रोणका भी सर्वनाश कर डाला। इसके अभावमें सम्भव है महाभारत-जैसा युद्ध होता ही नहीं और उस युद्धसे उपजी भयानकता देखने-सुननेमें न

आती, जिसने धरतीको श्रेष्ठ योद्धाओंसे खाली कर दिया।

कई बार ऐसा होता है कि हम किसी परिचित या रिश्तेदारके घर या किसीके उत्सवमें गये और वह हमारी उपेक्षा या अपमान कर देता है अथवा यथोचित सम्मान नहीं करता। कई लोगोंकी आदत होती है कि स्वयं तो अच्छा खायेंगे-पीयेंगे, लेकिन अतिथियोंको गन्देसे गन्दा खिलायें-पिलायेंगे; लेकिन कुछ लोग ऐसे भी हैं जो अतिथियोंको हमेशा अच्छेसे अच्छा खिलायें-पिलायेंगे। हमारी संस्कृति तो 'अतिथिदेवो भव' की है। ये हमें फैसला करना है कि यदि हमें कोई अवसर मिल जाता है तो क्या हम भी उसके साथ उससे भी वैसा ही गलत व्यवहार करें? फिर हममें और उन सज्जनमें फर्क ही क्या रह गया? लेकिन लोग प्रायः ऐसा ही करते हैं। नहलेपर दहला मारनेमें फौरी खुशी तो मिलती है, लेकिन दीर्घकालिक सम्बन्धोंपर इसका निहायत बुरा प्रभाव पड़ता है। बदला लेनेकी भावना एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसका कभी अन्त नहीं हो सकता।

द्रोण द्रुपदसे बदला लेना चाहते थे और कौरव भी द्रौपदीसे बदला लेना चाहते थे। परिणाम हमारे सामने है। बदला कभी पूर्ण नहीं होता। आज आप बदला ले रहे हैं तो कल दूसरा बदला ले रहा है। फिर आप पुनः बदला लेनेकी तैयारीमें लग जाते हैं और ये सिलसिला कभी समाप्त नहीं होता। पूरा जीवन प्रतिशोधकी अग्निको समर्पित हो जाता है, लेकिन फिर भी बात नहीं बनती। मनुष्य समाप्त हो जाता है, लेकिन प्रतिशोध नहीं; क्योंकि यह पीढ़ियोंतक चलता जाता है, जिसमें अगली पीढ़ियाँतक स्वाहा हो जाती हैं। जो थम जाय, वह प्रतिशोध ही कैसा? दोस्त-रिश्तेदार हों अथवा पड़ोसी या कोई अन्य परिचित, कई बार अच्छे-खासे सम्बन्ध शत्रुतामें परिवर्तित हो जाते हैं। बदला लेनेमें दूसरोंको नीचा दिखानेका प्रयास स्वाभाविक है और इस प्रक्रियामें कई बार हम अपने नैतिक स्तरतकसे गिर जाते हैं और ये दूसरेकी सजा स्वयंको देने-जैसा ही है।

यदि सचमुच बदला लेना है तो जिससे आप आहत हैं, उस व्यक्तिकी उपेक्षा न करके सब कुछ भुलाकर सच्चे मनसे उसकी आवभगत कीजिये, उसका सम्मान कीजिये। सम्भव है, उसे अपनी गलती या कियेका अहसास हो जाय और वह भविष्यमें ऐसा न करे। यदि ऐसा नहीं भी होता तो भी आप क्यों स्वयंको अपने स्तरसे नीचे गिराने-जैसा कदम उठायें? दूसरा व्यक्ति चोर, धूर्त, पाखण्डी अथवा अहंकारी है तो क्या उससे बदला लेनेके लिये हम भी चोर, धूर्त, पाखण्डी अथवा अहंकारी बन जायँ? कोई हमें धोखा न दे सके अथवा हमारा अहित न कर सके या हमें मानसिक क्लेश न पहुँचा सके—इसके लिये सचेत एवं सतर्क रहें, बात सँभलनेमें न आ रही हो तो उससे किनारा कर लें, लेकिन सुशिक्षित, सुसभ्य एवं सुसंस्कृत व्यक्तियोंका अपने आचरणसे गिरना अथवा जैसेको तैसेवाला व्यवहार अपनाना श्रेयस्कर नहीं लगता।

## विद्यासागरकी दयालुता

उन दिनों ईश्वरचन्द्र विद्यासागर खर्मा ठाँडमें रहते थे। एक दिन उन्हें ढूँढ़ता एक व्यक्ति आया और बोला—'मैं कई दिनोंसे आपसे मिलनेके प्रयत्नमें था। कलकत्तेतक भटक आया हूँ।'

विद्यासागर बोले—'देखिये, भोजन तैयार है। चलिये, पहले भोजन कर लीजिये। फिर हम दोनों बातें करेंगे।'

यह बात सुनते ही उसके नेत्रोंसे टप-टप आँसू गिरने लगे। विद्यासागरने रोनेका कारण पूछा तो बोला—'मुझे तो आपकी दयालुतासे रोना आया, गरीबको कौन पूछता है। कई दिनसे भटक रहा हूँ। पानी पीनेकी बात दूर, किसीने बैठनेतकको नहीं कहा और आप हैं कि…।'

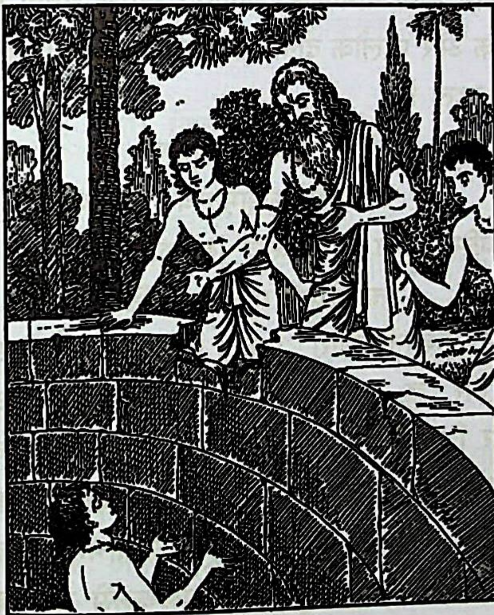
'इसमें हो क्या गया?' विद्यासागरने उसे बीचमें ही रोक दिया। 'अपने घर आये अतिथिका सत्कार सबको करना ही चाहिये। आप झटपट चलकर भोजन करें।'

बड़े सम्मानसे उन्होंने उसे भोजन कराया। पीछे पूछा कि वह उनके पास किस कामसे आया है।

# आरोग्यदायी अश्विनीकुमार-स्तुति

( डॉ० श्रीगोपेशकुमारजी शर्मा )

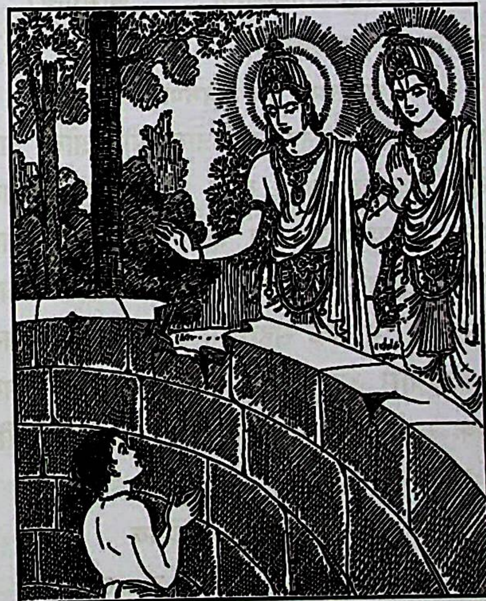
महाभारतके प्रारम्भमें ही अर्थात् आदिपर्वके अन्तर्गत पौष्य पर्वमें एक प्रसंग आता है कि आचार्य आयोदधौम्यने अपने एक शिष्य उपमन्युको गौरक्षाहेतु नियुक्त किया तथा उसकी परीक्षा लेते हुए उसका भोजन, भिक्षा, दूध, दुग्धफेन आदि क्रमशः बन्द कर दिया। कालान्तरमें उपमन्युने भूखसे पीड़ित होनेपर आक (अर्क Calotropis procera)-के पत्ते खा लिये थे। उसके क्षारीय, तिक्त, कटु, रुक्ष तथा तीक्ष्ण गुणोंके कारण उसकी नेत्रज्योति नष्ट हो गयी। वह अन्धा हो गया और चलते-चलते कुएँमें गिर गया। रात्रिमें उसके आश्रममें नहीं पहुँचनेपर आचार्यने खोज आरम्भ करायी, तब उसकी स्थितिका



पता चला। वस्तुस्थिति जानकर आचार्यने उसे निर्देश दिया कि 'वत्स, तुम देवभिषक् अश्विनीकुमारोंकी स्तुति करो, वे तुम्हारी आँखें ठीक कर देंगे।' शिष्य उपमन्युने ऋग्वेदकी ऋचाओंद्वारा अश्विनीकुमारोंका स्तवन किया। अश्विनीकुमारोंने स्तुतिसे प्रसन्न होकर उपमन्युको (औषधियुक्त) अपूप (पुआ) दिया। इसपर उपमन्युने कहा कि बिना गुरुको निवेदित किये वह पुएका सेवन नहीं कर सकता। अश्विनीकुमारोंके बार-बार कहनेपर भी जब उपमन्युने पुएका सेवन नहीं किया, तब उसकी गुरुभक्तिसे प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे दाँत सुवर्णमय हो जायँगे, नेत्रज्योति भी ठीक हो जायगी तथा तुम्हारा कल्याण होगा। इसके बाद उपमन्युने सम्पूर्ण प्रसंग गुरुजीको बतलाया। आचार्य आयोदधौम्यने भी प्रसन्न होकर कहा कि जैसा अश्विनीकुमारोंने कहा है वैसा ही होगा, तुम कल्याणके भागी होगे तथा तुम्हारी बुद्धिमें समस्त वेद एवं धर्मशास्त्र स्वतः स्फुरित हो जायँगे।

उपर्युक्त कल्याणप्रदायक ये मन्त्र महाभारतमें इस प्रकार वर्णित हैं, इन्हें इनके मन्त्रार्थसहित यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

प्रपूर्वगौ पूर्वजौ चित्रभानू
गिरा वाऽऽशंसामि तपसा ह्यनन्तौ।
दिव्यौ सुपर्णौ विरजौ विमाना-
वधिक्षिपन्तौ भुवनानि विश्वा॥



हे अश्विनीकुमारो! आप दोनों सृष्टिमें पहलेसे विद्यमान थे। आप ही पूर्वज तथा चित्रभानु (सूर्य) हैं। मैं वाणी और तपके द्वारा आपकी स्तुति करता हूँ। आप ही अनन्त हैं, दिव्यस्वरूप हैं। सुन्दर पंखवाले दो पक्षीकी भाँति सदा साथ रहनेवाले हैं, रजोगुणशून्य और

अभिमानरहित हैं। सम्पूर्ण विश्वमें आरोग्यका विस्तार करते हैं।

**हिरण्मयौ शकुनी साम्परायौ**
**नासत्यदस्रौ सुनसौ वै जयन्तौ।**
**शुक्लं वयन्तौ तरसा सुवेमा-**
**वधिव्ययन्तावसितं विवस्वतः॥**

हे अश्विनीकुमारो! सुनहरे पंखवाले दो सुन्दर विहंगमोंकी भाँति आप दोनों बन्धु बड़े सुन्दर हैं। पारलौकिक उन्नतिके साधनोंसे सम्पन्न हैं, नासत्य और दस्र—ये आपके दो नाम हैं। आपकी नासिका बड़ी सुन्दर है। आप दोनों निश्चितरूपसे विजय प्राप्त करनेवाले हैं। आप ही विवस्वान् (सूर्यदेव)-के सुपुत्र हैं, अतः स्वयं ही सूर्यरूपमें स्थित हो दिन तथा रात्रिरूप काले तन्तुओंसे संवत्सररूप वस्त्र बुनते रहते हैं और उस वस्त्रद्वारा वेगपूर्वक देवयान तथा पितृयान नामक सुन्दर मार्गोंको प्राप्त कराते हैं।

**ग्रस्तां सुपर्णस्य बलेन वर्तिका-**
**ममुञ्चतामश्विनौ सौभगाय।**
**तावत् सुवृत्तावनमन्त मायया**
**वसत्तमा गा अरुणा उदावहन्॥**

परमात्माकी कालशक्तिने जीवरूपी पक्षीको अपना ग्रास बना रखा है। आप दोनों अश्विनीकुमार नामक जीवन्मुक्त महापुरुषोंने ज्ञान देकर कैवल्यरूप महान् सौभाग्यकी प्राप्तिके लिये उस जीवको कालके बन्धनसे मुक्त किया है। मायाके सहवासी अज्ञानी जीव जबतक रागादि विषयोंसे आक्रान्त हो अपनी इन्द्रियोंके समक्ष नतमस्तक रहते हैं, तबतक वे अपने-आपको शरीरसे आबद्ध ही मानते हैं।

**षष्टिश्च गावस्त्रिशताश्च धेनव**
**एकं वत्सं सुवते तं दुहन्ति।**
**नानागोष्ठा विहिता एकदोहना-**
**स्तावश्विनौ दुहतो घर्ममुक्थ्यम्॥**

दिन एवं रात—ये मनोवांछित फल देनेवाली तीन सौ साठ दुधारू गौएँ हैं। वे सब एक ही संवत्सररूपी बछड़ेको जन्म देती हैं और उसको पुष्ट करती हैं। यह बछड़ा सबका उत्पादक तथा संहारक है। जिज्ञासु पुरुष उस बछड़ेको निमित्त बनाकर उन गौओंसे विभिन्न फल देनेवाली शास्त्रविहित क्रियाएँ दुहते रहते हैं। उन सब क्रियाओंका एक ही दोहनीय फल है। इन गौओंको आप दोनों अश्विनीकुमार ही दुहते हैं।

**एकां नाभिं सप्तशता अराः श्रिताः**
**प्रधिष्वन्या विंशतिरर्पिता अराः।**
**अनेमि चक्रं परिवर्ततेऽजरं**
**मायाश्विनौ समनक्ति चर्षणी॥**

हे अश्विनीकुमारो! इस कालचक्रकी संवत्सर ही एकमात्र नाभि है, जिसपर रात और दिन मिलाकर सात सौ बीस अरे टिके हुए हैं। वे सब बारह महीनेरूपी प्रधियोंमें जुड़े हुए हैं। यह अविनाशी एवं मायामय कालचक्र बिना नेमिके ही अनियत गतिसे घूमता तथा इहलोक और परलोक दोनों लोकोंकी प्रजाओंका विनाश करता रहता है।

**एकं चक्रं वर्तते द्वादशारं**
**षण्णाभिमेकाक्षममृतस्य धारणम्।**
**यस्मिन् देवा अधि विश्वे विषक्ता-**
**स्तावश्विनौ मुञ्चतं मा विषीदतम्॥**

हे अश्विनीकुमारो! मेषादि बारह राशियाँ जिसके बारह अरे, छः ऋतुएँ जिसकी छः नाभियाँ हैं और संवत्सर जिसकी एक धुरी है, वह एकमात्र कालचक्र सब ओर चल रहा है। यही कर्मफलको धारण करनेवाला आधार है। इसीमें सम्पूर्ण कालाभिमानी देवता स्थित हैं। आप दोनों मुझे इस कालचक्रसे मुक्त करें; क्योंकि मैं यहाँ जन्मादिके दुःखोंसे अत्यन्त कष्ट पा रहा हूँ।

**अश्विनाविन्दुममृतं वृत्तभूयौ**
**तिरोधत्तामश्विनौ दासपत्नी।**
**हित्वा गिरिमश्विनौ गा मुदा चरन्तौ**
**तद्वृष्टिमह्ना प्रस्थितौ बलस्य॥**

हे अश्विनीकुमारो! आप दोनोंमें सदाचारका बाहुल्य है। आप अपने सुयशसे चन्द्रमा, अमृत और जलकी उज्ज्वलताको भी तिरस्कृत कर देते हैं। इस समय मेरु

पर्वतको छोड़कर आप पृथ्वीपर आनन्दसे विचर रहे हैं। आनन्द और बलकी वर्षाके लिये ही आप दोनों भाई दिनमें प्रस्थान करते हैं।

युवां दिशो जनयथो दशाग्रे
समानं मूर्ध्नि रथयानं वियन्ति।
तासां यातमृषयोऽनुप्रयान्ति
देवा मनुष्याः क्षितिमाचरन्ति॥

हे अश्विनीकुमारो! आप दोनों ही सृष्टिके आरम्भ-कालमें पूर्वादि दसों दिशाओंको प्रकट करते—ज्ञान कराते हैं। उन दिशाओंके मस्तक अर्थात् अन्तरिक्षलोकमें रथसे यात्रा करनेवाले तथा सबको समानरूपसे प्रकाश देनेवाले सूर्यदेवका, आकाशादि पाँच भूतोंका भी आप ही ज्ञान कराते हैं। उन सब दिशाओंमें सूर्यका जाना देखकर ऋषिलोग भी उनका अनुसरण करते हैं तथा देवता और मनुष्य स्वर्ग या मृत्युलोककी भूमिका उपयोग करते हैं।

युवां वर्णान् विकुरुथो विश्वरूपां-
स्तेऽधिक्षियन्ते भुवनानि विश्वा।
ते भानवोऽप्यनुसृताश्चरन्ति
देवा मनुष्याः क्षितिमाचरन्ति॥

हे अश्विनीकुमारो! आप अनेक वर्णोंकी वस्तुओंके सम्मिश्रणसे सब प्रकारकी औषधियाँ तैयार करते हैं, जो सम्पूर्ण विश्वका पोषण करती हैं। वे प्रकाशमान औषधियाँ सदा आपका अनुसरण करती हुई आपके साथ ही विचरती हैं। देवता और मनुष्य आदि प्राणी अपने अधिकारके अनुसार स्वर्ग और मृत्युलोककी भूमिमें रहकर उन औषधियोंका सेवन करते हैं।

तौ नासत्यावश्विनौ वां महेऽहं
स्रजं च यां बिभृथः पुष्करस्य।
तौ नासत्यावमृतावृतावृधा-
वृते देवास्तत्प्रपदे न सूते॥

हे अश्विनीकुमारो! आप दोनों ही 'नासत्य' नामसे प्रसिद्ध हैं। मैं आपकी तथा आपने जो कमलकी माला धारण की हुई है, उसकी पूजा करता हूँ। आप अमर होनेके साथ ही सत्यका पोषण और विस्तार करनेवाले हैं। आपके सहयोगके बिना देवता भी उस सनातन सत्यकी प्राप्तिमें समर्थ नहीं हैं।

मुखेन गर्भं लभेतां युवानौ
गतासुरेतत् प्रपदेन सूते।
सद्यो जातो मातरमत्ति गर्भ-
स्तावश्विनौ मुञ्चथो जीवसे गाः॥

युवा माता-पिता सन्तानोत्पत्तिके लिये पहले मुखसे अन्नरूप गर्भ धारण करते हैं। तत्पश्चात् वह अन्न पुरुषोंमें वीर्यरूप तथा स्त्रीमें रजोरूपमें परिणत होकर जड़ शरीर बन जाता है। तत्पश्चात् जन्म लेनेवाला गर्भस्थ जीव उत्पन्न होते ही माताके स्तनोंका दूध पीने लगता है। हे अश्विनीकुमारो! पूर्वोक्त रूपसे संसार-बन्धनमें बँधे हुए जीवोंको आप तत्त्वज्ञान देकर मुक्त करते हैं। मेरे जीवन-निर्वाहके लिये मेरी नेत्रेन्द्रियको भी रोगमुक्त करें।

स्तोतुं न शक्नोमि गुणैर्भवन्तौ
चक्षुर्विहीनः पथि सम्प्रमोहः।
दुर्गेऽहमस्मिन् पतितोऽस्मि कूपे
युवां शरण्यौ शरणं प्रपद्ये॥

हे अश्विनीकुमारो! मैं आपके गुणोंका बखान करके आप दोनोंकी स्तुति नहीं कर सकता। इस समय नेत्रहीन (अन्धा) हो गया हूँ। रास्ता पहचाननेमें भी भूल हो जाती है, इसीलिये इस दुर्गम कूपमें गिर पड़ा हूँ। आप दोनों शरणागतवत्सल देवता हैं, अतः मैं आपकी शरण लेता हूँ।

---

आत्यन्तिकं व्याधिहरं जनानां चिकित्सिकं वेदविदो वदन्ति। संसारतापत्रयनाशबीजं गोविन्द दामोदर माधवेति॥

वेदवेत्ताओंका कहना है कि गोविन्द, दामोदर और माधव—ये नाम मनुष्योंके समस्त रोगोंका समूल उन्मूलन करनेवाले भेषज हैं और संसारके (आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक—इन) त्रिविध तापोंका नाश करनेके लिये बीजमन्त्रके समान हैं।

# हमारा कल्याण—केवल भगवत्कृपासे

( श्रीघनश्यामदासजी मोदानी )

परमात्मा, जीव और माया तीन तत्त्व ही संसारमें विद्यमान हैं। तीनों ही अनादि और सनातन हैं। भगवान् चेतन हैं और संसारमें जो कुछ भी हमें दिखलायी देता है, वह भगवान्‌की ही विभूति है। भगवान् सारे चर और अचरके नियन्ता हैं, संसारकी उत्पत्तिके अव्यय बीज हैं, सब कुछ बनकर भी वे ज्यों-के-त्यों बने रहते हैं; क्योंकि वे पूर्ण हैं और पूर्ण कभी अपूर्ण नहीं हो सकता, अगर हो सकता तो उसका पूर्ण होना कैसे सिद्ध होता!

जीव भगवान्‌का अंश है और अल्पशक्तिमान् है, इसलिये **अणोरणीयान्** है। भगवान् सर्वशक्तिमान् तो हैं ही बल्कि शक्तिको भी शक्तिके प्रदाता हैं, इसलिये **महतो महीयान्** हैं। माया जड़ है और भगवान्‌से शक्ति पाकर संचालित होती है।

प्रकृतिके नियमके अनुसार चेतनका चेतनमें और जड़का जड़में स्वाभाविक खिंचाव रहता है, इसलिये जीवका भगवान्‌के प्रति आकर्षण होना स्वाभाविक है। अंश (आत्मा) अपने अंशी (भगवान्)-को पाकर ही शान्ति पा सकता है, इसलिये जीव शान्ति पानेकी लालसामें प्रतिक्षण प्रयत्नशील रहकर कर्म करता रहता है। हमें भगवत्कृपासे पंचतत्त्वोंद्वारा निर्मित मानवशरीर मिला है, इसका नष्ट होना अवश्यम्भावी है, इसलिये हमें इस शरीरके रहते-रहते भगवत्तत्त्वका अनुभव कर लेना अति आवश्यक है, अन्यथा ८४ लाख योनियोंमें भटकना पड़ेगा।

गुणोंकी दृष्टिसे प्रकृतिमें सत, रज और तम—तीन गुण विद्यमान हैं। रजोगुणी और तमोगुणी प्रवृत्ति मानवको पतनकी ओर तो ले ही जाती है, साथ ही पुनर्जन्मका हेतु भी होती है। सतोगुणी प्रवृत्ति उत्थानकी ओर ले जाकर मानव-जीवनके उद्देश्यकी प्राप्तिमें सहायक होती है। सतोगुणी प्रवृत्ति भगवान्‌का नाम, रूप, लीला, धाम, सत्संग और भगवान्‌के भक्तोंकी वाणीका सेवन करनेसे बनती है, इसलिये हमें निष्काम और निरहंकार होकर भगवद्दर्शन, अर्चन, नामजप आदि साधन निरन्तर करते रहना चाहिये।

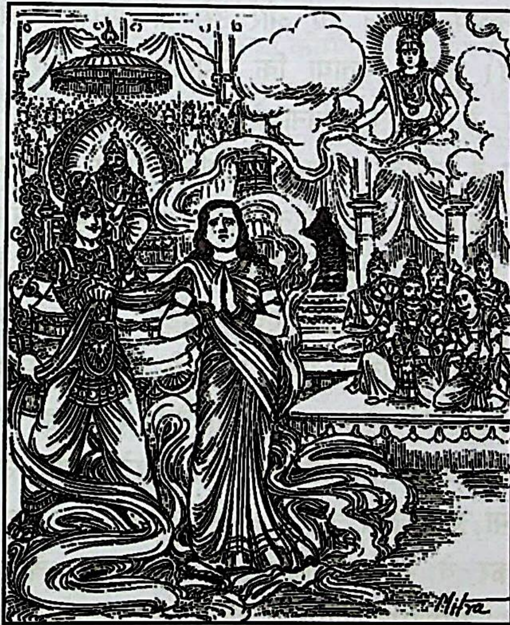
भगवान्‌की अहेतुकी कृपाके फलस्वरूप हमें मानव-शरीर हमारा कल्याण करनेके लिये मिला है, वह भी भारतवर्ष-जैसे पवित्र देशमें, हिन्दू-धर्म-जैसे पवित्र धर्ममें, धार्मिक भावनाओंसे ओत-प्रोत माता-पितासे, शुद्धशाकाहारी परिवारमें, धार्मिक और संस्कारयुक्त लोगोंका संग मिला है। भगवान्‌ने सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिशाली, दीनबन्धु, पतितपावन, शरणागतवत्सल, कृपासिन्धु आदि अपने दिव्य गुणोंसे कृपा करके हमारा परिचय करवा दिया। हमारे मनमें सत्संगके प्रति रुचि उत्पन्न कर दी, ये सभी परिस्थितियाँ देकर भगवान्‌ने अपनी प्राप्ति करवानेकी अपनी मंशाका परिचय देकर हमारे ऊपर अपार कृपा की है, अब हमें उनकी कृपाका बारम्बार आभार मानकर प्राप्त कृपाका सदुपयोग निष्काम और निरहंकार होकर निरन्तर सत्संग, नामजप आदि साधन करते रहना है।

प्रकृतिके अनुसार जीव किसी भी क्षण निष्क्रिय नहीं रह सकता। कर्मके लिये क्रिया और क्रियाके लिये कर्ताका होना अति आवश्यक है। कर्म, क्रिया और कर्ताका सीधा सम्बन्ध कर्ताके अहम्‌से होता है। अहंकार जीवके जीवत्वका हेतु होता है और भगवत्प्राप्तिमें बाधक है, दैन्य-अवस्था भक्तिमार्गका भूषण है और भगवत्प्राप्तिमें सहायक है। इसलिये हमें भगवत्कृपा पानेके लिये दीन एवं निरबल बनकर अपने अहम्‌को उस विराट् सत्तामें विलय करनेके लिये सर्मपण करना चाहिये और यही शरणागति है। शरणागत होनेसे जीवको विश्राम मिलता है, जो आत्माका सहजस्वरूप हैं।

**ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥**

शरणागत होनेके लिये हमारी तीव्र इच्छाशक्तिका जाग्रत् होना, प्राप्तिके लिये मनमें प्रबल तड़पन उत्पन्न होना, पूर्ण जोशके साथ प्रयत्न करना, प्राप्त न होनेपर मछलीका जलसे विछोह होने-जैसी व्याकुलताका होना,

युवा पतिव्रता पत्नीका परदेश गये पतिके वियोग-जैसा चिन्तन होना, बिना पंख उगे पक्षियोंके बच्चोंका अपने पेटकी क्षुधा मिटानेके लिये माँकी बाट जोहने-जैसी प्रतीक्षाका होना—इस प्रकारकी तीव्र चाहकी पूर्तिके अभावके भावका चिन्तन निरन्तर मनमें रहनेसे स्वयं अपना तथा संसारके सारे माने हुए सहारोंपरसे विश्वास उठकर मनमें उत्पन्न निर्बलता और असहाय-अवस्थाके कारण *'सुने री मैंने निरबल के बल राम'*, इस सत्यकी सत्यरूपसे मनमें स्वीकृति होकर केवल एक भगवान्‌के सहारेको अवलम्ब मानकर उनका सहारा पानेके लिये दीन अवस्थाके कारण आँखोंसे निरन्तर अश्रुपात होकर करुण क्रन्दन करके आर्तभावसे



भगवान्‌का सहारा पानेकी याचना करना जैसा कि द्रौपदीजीने निर्वस्त्र हो जानेकी विकट परिस्थिति आ जानेपर किया था। भगवान्‌का सहारा या दर्शन हमारे प्रयत्नका परिणाम नहीं हो सकता; क्योंकि भगवद्दर्शन कृपासाध्य है। इसलिये हमें भगवद्दर्शन पानेकी याचना उनके समक्ष निरन्तर करते रहना चाहिये, फिर भगवान् जब चाहे कृपा करें, किंतु वह कृपा अवश्य करेंगे—यह विश्वास हमेशा मनमें रखना चाहिये; क्योंकि भगवान्‌के स्वभावमें कृपापरवशता है, फिर भगवान् हमारे माता-पिता और कृपासिन्धु हैं तथा उन्होंने कृपाकर जिस उद्देश्यकी प्राप्तिके लिये हमें मानव-शरीर प्रदान किया है, वह उद्देश्यपूर्ण हो जानेका उदाहरण कृपासिन्धुकी कृपाका सार्वजनिक होकर कलिकालके मानवके लिये प्रेरणादायक सिद्ध होगा और हमारा कल्याण होनेका उदाहरण 'सर्वजनहिताय' हो जायगा।

हमें किसी भी स्थितिमें निराश नहीं होना है; क्योंकि मनुष्य-शरीरमें मुक्ति स्वाभाविक है, केवल हमें कर्तव्यकर्म करते रहना है। भगवान् कभी भी किसीका बुरा नहीं करते, फिर हमारा बुरा क्यों करेंगे? जिस प्रकार नारदजीको उनकी इच्छाके विपरीत उनके हितके लिये बन्दर बना दिया, ठीक उसी प्रकार हमारे कोई बड़े हितके कारण देरी लग रही होगी, अन्यथा देरी समझना हमारी नासमझी है और यह हमारे स्वार्थ और अहंकारका प्रतीक है। हमारा हित किसमें हैं, इस बातको भगवान् अच्छी तरह जानते हैं। इसलिये हमें भगवत्कृपाका प्रतिदिन दर्शन, चिन्तन करके उनका आभार मानकर प्राप्त कृपाका सदुपयोग करते रहना है; क्योंकि भगवान्‌ने कृपाकर हमारे कल्याणके लिये एक आश्वासन गीताजीमें और दिया है कि हमारा यह शरीर छूटनेके समय भी अगर हमें भगवान्‌की याद आ गयी तो भी हमारा कल्याण निश्चित है। वह अन्त समय भी इसी समयमेंसे आयेगा तथा हमारे द्वारा किये गये सतत भगवद्भजन, चिन्तन, दर्शनकी लालसा आदि साधन अन्त समयमें हमारे काम आयेंगे और अन्त समयमें भगवत्कृपा भगवत्स्मृति करा देगी। इसलिये हमें श्रद्धा एवं विश्वासके साथ निष्काम और निरहंकार होकर साधना निरन्तर करते रहना चाहिये, फिर एक दिन भगवान् कृपा-कर हमारा कल्याण इसी मानव-शरीरमें करनेकी कृपा करेंगे।

# संत-स्मरण

( परम पूज्य देवाचार्य श्रीराजेन्द्रदासजी महाराजके गीताभवन, ऋषिकेशमें हुए प्रवचनसे साभार )

❀ श्रीगंगाजीकी महिमा बताते हुए श्रीविष्णु आश्रमजी महाराजद्वारा सुनायी एक कथाका महाराजजीने स्मरण किया। एक बार गरुड़जी गंगाजीमें गोता लगा रहे थे। उस समय उन्हें भूख लगी। पाससे गुजरते एक सर्पको पकड़कर उन्होंने स्वाभाविक आहार कर लिया। फिर गंगाजीमें गोता लगाया, तब एक चतुर्भुज दिव्य पुरुष गरुड़जीकी नाकके रास्ते प्रकट हो गया। पूछनेपर उसने बताया कि मैं वही सर्प हूँ, जिसका आपने भक्षण किया था। गंगाजीके स्पर्शसे मुझे यह रूप प्राप्त हो गया है। अब मुझे अपनी पीठपर वैकुण्ठ ले चलो। गरुड़जीको वैसा ही करना पड़ा। वैकुण्ठमें भगवान् नारायणके पूछनेपर गरुड़जी बोले कि यह घटना आपके ही चरणजल (गंगाजल)-के प्रभावसे हुई है। गंगामैयाकी जय!

❀ महापण्डित पद्मनाभ काशीमें शास्त्रार्थ करने आये। विश्वनाथजीकी प्रेरणासे पण्डित उन्हें कबीरदासके पास ले गये। कबीरदासने कहा कि मेरा तो सब समाधान हो चुका है, आपको कुछ पूछना हो तो पूछिये। महापण्डितने आग्रह किया तब कबीरदासने पूछा 'आपने पढ़कर समझा कि समझकर पढ़ा?' महापण्डित समझ गये कि ये कोई सिद्ध महापुरुष हैं। उनके पूछनेपर कबीरदास बोले कि हमें तो राम-राम कहते सब समझ आ गयी। रात्रिमें पण्डितजीको स्वप्नमें एक पीपलका वृक्ष दीखा, जिसकी एक डाल खाली थी, बाकीपर प्रेत बैठे थे। उन्हें आवाज सुनायी दी कि यह डाल तुम्हारे लिये खाली है। शास्त्रार्थमें ब्राह्मणोंका अपमान करनेके कारण तुम्हें प्रेत बनना पड़ेगा। इससे बचना हो तो कबीरसे उपदेश ले लो। प्रातः वे कबीरदासजीके पास उपस्थित हुए और उपदेशकी प्रार्थना की। कबीरदासने आदेश दिया कि विद्याभिमानको गंगाजीमें बहाकर आओ। वैसा करनेपर कबीरदासके नामोपदेशका पालन करके महापण्डित पद्मनाभ सिद्ध हो गये। कुछ दिनों बाद उन्हें गंगास्नानसे लौटते समय एक कुष्ठी सेठ दीखा, जो रोगसे निराश होकर गंगामें जलसमाधि लेने जा रहा था। पण्डितजीके पूछनेपर उसने अपनी व्यथा बतायी। पद्मनाभने दयावश उसे तीन बार रामनाम लेकर गंगास्नानकी आज्ञा दी और वैसा करनेपर वह पूर्णतः रोगमुक्त हो गया। जब कबीरदासको यह प्रसंग मालूम हुआ, तब वे पद्मनाभपर नाराज हुए और उसे प्रायश्चित्तका आदेश दिया। उन्होंने बताया कि पद्मनाभसे नामापराध हो गया है। जिस रामनामके प्रभावसे भवरोग नष्ट होता है, उसका सामान्य सांसारिक रोगके निवारणहेतु तीन बार उपयोग करना उसकी महत्ताका अपमान है। इस अपराधका प्रायश्चित्त होना आवश्यक है।

❀ ऋषिकेशकी एक घटना महाराजजीको मौनीजीने सुनायी। एक संन्यासी सन्त स्वर्गाश्रमसे गंगापार गये थे। वापस लौटतेमें शाम हो गयी। बीच गंगामें नावपरसे आचमन करते समय उनका चश्मा गंगाजीकी धारामें गिर गया। अब इस पार आकर वे संत गंगाकिनारे एक पत्थरपर बैठ गये और विष्णुसहस्रनामका पाठ करने लगे। बिना चश्मा उन्हें अपनी कुटियाका मार्ग नहीं दीख रहा था और रुपया-पैसा नहीं छूनेका उनका व्रत भी था। पाठ करते कुछ समय बीता तब एक मछली गंगाकी धारापर उछलती हुई आयी और उनकी गोदमें आकर गिरी। उसके मुँहमें उनके चश्मेकी डंडी थी, जिसे छोड़कर वह वापस गंगामें कूद गयी। इस प्रकार उन निरुपाय महात्माके निमित्त मानो मत्स्यावतार ही हुआ। 'प्रेम'

कहानी—

# माँ

( श्रीबलविन्दरजी 'बालम' )

रजनीका पति उच्च पदाधिकारी था। वह शादीसे दस वर्ष बाद ही अचानक हृदय गति रुकनेसे परमात्माको प्यारा हो गया। उच्चाधिकारी होनेके नाते उसके घरका वातावरण, रहन-सहन ऊँचे स्तरका था। रजनी शिक्षित तो थी, परन्तु उसने कोई भी नौकरी नहीं की थी।

रजनीका आठ वर्षका एक लड़का राजेश था। वह अपने पुत्रकी सुख-सुविधाके लिये तन-मन-धनसे कुर्बान थी। उसने एक प्राइवेट कॉलेजमें नौकरी कर ली थी। राजेशकी खुशी ही उसकी खुशी थी। वह एक माँके फर्ज ही नहीं बल्कि पिताके फर्ज भी सहर्ष एवं सहृदयतासे निभाती। राजेश उसकी जिंदगी, उसके साँसोंकी जरूरत, उसके मोहकी कीमत, उसके नयनोंकी ज्योति था। उसके लिये राजेश मन्दिरकी भाँति था तथा वह एक पुजारिनकी तरह उसकी सेवा-शुश्रूषामें सब कुछ कुर्बान करनेके लिये समर्पित थी।

वयस्क होकर राजेश उच्च शिक्षा अर्जित करके सरकारी अधिकारी बन गया था। रजनीने अपने पुत्रकी शादी धूमधाम एवं अपनी हैसियतसे बढ़कर भारी खर्चसे की थी। राजेशकी पत्नी सुन्दर, सुशील थी। वह भी सरकारी पदपर कार्यरत थी। लगभग एक वर्षके पश्चात् रजनीके आँगनमें पौत्रके आगमनने खुशियोंके बंदनवार सजा दिये। रजनीकी खुशी अम्बरको छूने लगी। वह परमात्माका शुक्र अदा करती कि उसकी कृपासे उसे यह खुशीका अवसर देखनेको मिला।

उसने अपने पौत्रका नाम रवि रखा; क्योंकि उसके आगमनसे उसके जीवनमें खुशियोंका नया सवेरा हुआ था।

समय हिरनकी भाँति कुलाँचे मारता हुआ भागता चला गया। रवि अब लगभग दस वर्षका हो गया था। रजनी उसकी प्रत्येक ख्वाहिशपर जान देती थी। जिस तरह संसारमें दादी-पोतेका स्नेह-मोह होता है, उससे भी ज्यादा। घरके प्रत्येक काममें हाथ बटानेको रजनी अपनी हिम्मतसे बढ़कर प्रसन्नतापूर्वक दौड़ती-फिरती। अपनी पुत्र-वधूका वह एक सेविकाकी भाँति सहयोग करती हुई खुशीका अनुभव करती।

रजनी सेवानिवृत्त हो गयी। वह वृद्ध होनेके बावजूद भी घर-बाहरके अनिवार्य कार्योंके लिये हाथ बँटाती न थकती। खुशी हृदयमें हो तो थकावटका एहसास नहीं होता। उसने अपनी सेवानिवृत्तिके अवसरपर मिली समस्त धनराशि राजेशके नाम करवा दी।

रजनी अब लगभग ६५ वर्षकी हो चुकी थी। उसको कई बीमारियोंने घेर लिया था। ब्लड-प्रेशर, शुगर, गुरदोंकी बीमारी, नजरका कमजोर होना इत्यादिसे वह पीड़ित थी। अब उसको चलना भी मुश्किल लगता। किसी चीजका सहारा लेकर ही चलती। उसकी जिंदगी बेडतक ही सीमित होकर रह गयी थी।

एक दिन राजेशकी पत्नी उससे कहने लगी, मैंने कहाजी, माताजी सारा दिन खाँसते रहती हैं। कई बीमारियाँ हैं, रवि उनसे ही खेलता रहता है। वह रविको बार-बार चूमती रहती हैं, यह ठीक नहीं। मेरा इशारा आप समझ ही गये होंगे। हम दोनों ड्यूटीपर चले जाते हैं, रवि स्कूल चला जाता है। थके-माँदे आकर माताजीको सँभालना कितना मुश्किल होता है। कम-से-कम मैं तो नहीं सँभाल सकती। इन्सानके कुछ अपने भी मनोरंजन होते हैं। आजकल नौकर रखने भी तो ठीक नहीं। तनख्वाह बहुत माँगते हैं। मैं तो कहती हूँ कि माताजीको वृद्धाश्रममें छोड़ आते हैं। वहाँ इनकी देखभाल भी ठीक होगी और हम भी आजाद। आया-गया आजादीसे रह सकता है। वहाँ इनका दिल भी लग जायगा।

'परंतु मेरी बात सुन, जिस माँने अनेक कष्ट झेलकर हमको यहाँतक पहुँचाया। अब उनको इस उम्रमें वृद्धाश्रममें छोड़ आना! कोई अच्छी बात नहीं। समाज क्या कहेगा? रिश्तेदार क्या कहेंगे? पोतेके साथ माँका बहुत मोह-स्नेह है। उसके बगैर तो वह मर जायगी। वह तो उसकी जिंदगी है। पोतेके साथ उसका दिन

चढ़ता है, रात होती है। माँको आश्रममें भेजना ठीक नहीं' राजेशने कहा।

परंतु पत्नीने इतना मजबूर कर दिया कि राजेशको सारे हथियार फेंकने पड़े।

एक दिन शामको बिस्तरपर सरहाने (तकिये)-की आड़ लगाकर बैठी माँके पास राजेश जा बैठा। कलेजेको सीनेसे बाहर निकालकर, हिम्मतका आसमाँ बाँधकर माँसे कहने लगा, माँ आपसे एक बात करनी है।

हाँ, बेटा, बताओ, क्या बात है? तेरी कौन-सी बात मैंने आजतक नहीं मानी बेटा, जल्दी बता क्या बात है?

माँ, क्या बताऊँ?

'बता ना मेरा पुत्र, खुलकर बात कर, डर-डरके बात क्यों कर रहा पुत्र! आजतक तो ऐसी घबराहटमें मेरे साथ कभी बात नहीं की, बता मेरा पुत्र! क्या बात है? मैं तेरी प्रत्येक शर्त पूरी करूँगी, मेरे लाल! आखिर बात है क्या? जिसको जल्दी नहीं बता रहा।' रजनीने कहा।

माँ-बेटेकी यह बात हो ही रही थी कि ऊपरसे राजेशकी पत्नी भी आ गयी तथा उसने हिचकिचाहटके पंख कुतरते हुए दिलेरीके साथ सय्यादकी भाँति कहा—'माँ जी, दरअसल बात यह है कि हम चाहते हैं कि आप वृद्धाश्रममें चली जायँ। वहाँ आपकी देखभाल अच्छी तरहसे होगी। खर्च तो हम देंगे ही। घरमें आपकी देखभाल अच्छी तरहसे नहीं होती, कई कमियाँ (त्रुटियाँ) रह जाती हैं। घरमें आपकी देखभाल करनी मुश्किल होती है। हम चाहते हैं आपको वृद्धाश्रमकी अच्छी सुविधाओंमें छोड़ आयें। आपका वहाँ दिल भी लगा रहेगा। हम लोग वहाँ आपसे मिलने आते रहेंगे।'

माँने हँसते हुए झटसे कहा—'हाँ! पुत्र, मैं तैयार हूँ। यह तो मैं भी सोचती हूँ, महसूस करती हूँ, पुत्र, तू मुझे वृद्धाश्रममें छोड़ आ। मुझे कोई एतराज नहीं। बहू बिलकुल ठीक कह रही है।'

माँने डबडबाई आँखोंसे चारों ओर देखा, पुत्र-वधूको देखा, पोतेकी ओर देखा और नजरें नीची करते हुए खूनके आँसू कलेजेके किसी कोनेमें बहाती चली गयी, शायद अपने पतिकी यादमें, जैसे पति उसको आशीर्वाद दे रहा हो, बल दे रहा हो, हिम्मत तथा धैर्यकी शक्ति दे रहा हो।

पुत्रवधूने जुर्रतसे कहा—'माँ जी, आज शनिवार है, सोमवारसे हम आपको आश्रममें छोड़ आयेंगे। आपकी तैयारी भी कर देते हैं।'

रजनी पतिको याद करके सुबुक-सुबुककर कलेजेकी आँखोंके जरिये रोकर गुमसुम-सी हो गयी।

पुत्रवधूकी खुशी तथा सासके आँसू—दो विपरीत दिशाओंका वर्तमान एक इतिहासको रचने जा रहा था।

रात बिस्तरपर पड़ी रजनी सोच रही थी, काश! आज वह जिन्दा होते, मेरी ओर कोई आँख उठाकर नहीं देख सकता था। वह घर मेरा होना था, जो आज मेरा नहीं। मेरा तो कुछ भी नहीं है आज यहाँ।

वह मन-ही-मन सोचने लगी, पुत्रवधूसे तो दूर हो सकती हूँ, परंतु पोतेसे दूर जाना तो मेरे लिये मौत (मृत्यु)-के समान है। रविके बगैर मैं जिंदा नहीं रह सकती। रवि मेरा दिन भी, दोपहर भी, रात भी। मेरी नस-नसमें रवि है।

वह सोचने लगी, परमात्मा कौनसे जन्मका बदला ले रहा है मुझसे। जीते-जी सब कुछ छीन रहा है। माँ-बाप बच्चोंको संस्कार दे सकते हैं, प्यार दे सकते हैं, सभ्याचार दे सकते हैं, शिष्टाचार सिखा सकते हैं, परंतु व्यावहारिक जिंदगी तो बच्चे स्वयं ही अपने-आपसे, समाजसे, आस-पाससे ही सीख सकते हैं, यहाँ माँ-बाप क्या कर सकते हैं। अनिवार्य नहीं, व्यावहारिक तौरपर शिक्षित बच्चे अच्छे हों।

रजनीके मनमें कई ख्याल आते और परोक्ष हो जाते। जिंदगीके क्या अर्थ हैं, उसकी समझसे बाहर हो गये।

सोमवारको रजनीको वृद्धाश्रममें छोड़ आये। रवि

गुम-सुम था, जैसे उसका कीमती जानसे प्यारा खिलौना गुम हो गया हो। कुछ बोल नहीं रहा था। उसने अपनी माँसे उदास मुद्रामें कहा—'दादी माँको वहाँ क्यों छोड़ आये हो?' इतना कहनेकी देर थी कि उसकी माँने जवाबके रूपमें जोरसे एक थप्पड़ उसके मुँहपर जड़ दिया। वह बिलखकर रोता रह गया।

दादी माँके जानेसे जैसे उसकी दुनिया लुट गयी हो, जैसे चारों ओर अँधेरा छा गया हो, जैसे उसके हाथ-पैर शून्य हो गये हों, जिस्म पत्थर हो गया हो तथा उदासी उसकी जिन्दगीका हिस्सा बन गयी हो।

रजनी अब वृद्धाश्रममें रहने लगी। वहाँ वह सुबह-शाम मन्दिरमें जाती, अपने पोतेके दर्शन कृष्ण-भगवान्की मूर्तिमें करनेके लिये। कृष्णभगवान्की मूर्तिको चूमती, प्यार करती, देख-देख रोती, घुट-घुटकर छातीसे लगाती। पूजा-अर्चना करती न थकती। अपनी ममता उड़ेल देती।

आश्रममें रहकर उसने धार्मिक प्रवचन शुरू कर दिया था। उच्च शिक्षिता होनेके कारण उसको धार्मिक ज्ञान बहुत था। सारा आश्रम उसका श्रद्धालु बन गया। सभी महिलाओंमें उसने एक क्रान्ति खड़ी कर दी। जीवनके अर्थ ढूँढ़ लिये। धार्मिक प्रवचन उसका आसरा बन गये। किस्मतको कोसना छोड़कर उसने भगवान्को हृदयमें रख लिया।

रजनी पतिकी याद कलेजेमें लेकर अपनी मंजिलकी ओर बढ़ती चली गयी।

कभी-कभी जब पुत्रवधू और पोता उससे मिलने आते तो वह पोतेकी दबी हुई भावनाओंको समझती, परंतु वह चुप रहती। पोतेसे दूरी बनाकर रखती थी। कहीं मोह-ममता उदासी बनकर उसकी सेहत तथा पढ़ाईका नुकसान न कर दे। जब पोता चला जाता तो वह कमरेमें अकेली बैठकर रोती रहती और फिर स्वयंको हौसला-धैर्य देकर अपनी सारी टूटी हुई हिम्मतको इकट्ठा करके झूठी सांत्वनामें उतर जाती।

इस तरह वृद्धाश्रममें कुछ वर्ष ही गुजरे थे कि रजनी सख्त बीमार हो गयी। उसने वृद्धाश्रमकी प्रभारी महिलाको विनय करते हुए कहा—'मैं अपने पुत्रसे मिलना चाहती हूँ। उसको बुला दो।'

रजनीके पुत्रको फोनपर सन्देश दे दिया गया, 'राजेश! आपकी माताजी सख्त बीमार हैं। आपसे मिलना चाहती हैं।'

राजेशने कहा—'आज बुधवार है, मैं छुट्टीवाले दिन रविवारको मिलने आऊँगा।'

रविवारको राजेश अकेला ही माँसे मिलनेके लिये आया तो राजेशने माँको देखते हुए कहा—'माँ! आपने मुझे याद किया। सेहत तो ठीक है न?'

हाँ पुत्र! ठीक ही हूँ।

माँने कहा—'पुत्र! मैं तुझसे कुछ कहना चाहती हूँ?'

हाँ, माँ! बतायें।

पुत्र! यहाँ गर्मी बहुत है, यहाँ मेरे कमरेमें एक ए०सी० लगवा दे, पंखेकी हवा बहुत गर्म होती है। यहाँ रोटी ठंडी मिलती है, एक ओवन लगवा दे। खाना ठण्डा होनेकी वजहसे कई बार भूखा ही सोना पड़ता है। पुत्र! यहाँ गर्म पानी पीनेको मिलता है, एक छोटी-सी फ्रिज ला दे। यहाँके बेड पुराने हैं, नींद नहीं आती। पुत्र! यह सब चीजें ला दे।'

राजेश माँकी बातें सुनकर आश्चर्य एवं आक्रोशसे विह्वल होकर माँसे कहने लगा—'माँ! कई वर्षोंसे तू यहाँ रह रही है। तूने कभी भी इन चीजोंकी पहले डिमाण्ड नहीं की, परंतु अब जबकि तू मरणासन्न दशामें है, तो अब इन चीजोंके लिये लालसा क्यों? क्या ऐसा व्ययभार निरर्थक नहीं है।'

माँने ममता और स्नेहसे कहा—'पुत्र! नहीं, यह बात नहीं है, यहाँ बहुत-सी तकलीफें हैं। मुझे तेरा ख्याल है पुत्र! क्योंकि तेरे बच्चोंको भी कलको तुझे यहाँ छोड़ने आना है। तुझे कोई तकलीफ ना हो, मेरे लाडले! इसीलिये मैं इन चीजोंको मँगवा रही हूँ, जो कि तेरे लिये जरूरी हैं।'

# कर्मफल

( डॉ० श्रीअनुज प्रतापसिंहजी, डी०लिट्० )

कोई कार्य बिना सोचे-समझे नहीं करना चाहिये; क्योंकि स्वकृत कर्मका फल-भोग अनिवार्य है। इस सम्बन्धमें हमारे शास्त्र और समाजमें, अतीत और वर्तमानमें असंख्य उदाहरण भरे पड़े हैं। सबको लोग पढ़ते, सुनते और देखते हैं—फिर भी चूक जाते हैं। चूक सर्वदा दुःखदायिनी होती है। शास्त्रोंको पढ़ना, समझना और उनके आदर्शोंके अनुसार जीना सबके वशकी बात नहीं है। संसारको सभी लोग देखते हैं, मगर कुछ लोग देखकर भी अनदेखा करते हैं—वे जन्मान्धसे भी विकट अन्धे हैं। जन्मान्ध व्यक्ति लोकके सम्बन्धमें बहुत जानकारी लेता है, यथा प्रसंग वह हँसता और पश्चात्ताप करता है। बाल-बच्चोंको कुमार्गपर जानेसे रोकता है। इसके साथ आँखवालोंकी कहानी बड़ी विचित्र है; वे देखते हैं कि अपराधी दण्ड पा रहे हैं, पर निकट भविष्यमें अपराध करते जा रहे हैं, इसी कारण संसारमें अपराध बढ़ते जा रहे हैं। कठोर-से-कठोर दण्डविधान निष्प्रभावी होते जा रहे हैं। इधर पढ़े-लिखे अपराधियोंकी संख्या बढ़ी है; यह अशुभ संकेत है।

शिवरात्रिके मेलेमें घूमते हुए कैलेण्डरकी दुकानपर रुक गया; देवी-देवता, प्राकृतिक दृश्य, भवन और मन्दिरके चित्रोंको देखते हुए मेरी दृष्टि एक चित्र-विशेषपर रुक गयी; वह चित्र 'करनी-भरनी' का था। अनेक चित्र बने थे—जिनके नीचे कार्य करने और उसके फलको भोगनेके वाक्य लिखे थे। मुझको सब कुछ बड़े कामके लगे। मैं कैलेण्डरको खरीदकर लाया और उसको घरके मुख्य द्वारकी बगलकी दीवारपर लगा दिया। जो आता, वह बड़ी उत्सुकतासे एक-एक चित्रको देखता, फिर गम्भीर होकर चला जाता। वह एक आकर्षणका केन्द्र हो गया।

युवा होनेपर मैं एक बार जगन्नाथपुरी गया। वहाँ मुख्य मन्दिरके पीछे अनेक छोटे-बड़े कक्षोंको देखा। उस खण्डमें प्रवेशके लिये एक मुख्य द्वार बना था—जिसपर लिखा था—'करनी-भरनी'। मैं भीतर जाकर एक-एक कक्षको देखने लगा; कुछ लोग पहलेसे ही देख रहे थे। वहाँ कर्म और फल-भोगकी मूर्तियाँ बनी थीं; दीवालपर उनके साथ लेख-पट्टियाँ भी लगी थीं। सभी लोग बड़ी गम्भीरतासे देख रहे थे। नरकभोगके दृश्य बड़े भयावह थे।

मेरे गाँव जानेपर वहाँके बड़े पण्डितजी मुझसे मिलनेके लिये अवश्य आते हैं। पढ़ाई-लिखाई, नौकरी-चाकरी, स्वास्थ्य, धर्म-कर्म और देश-कालकी बातें करते हैं। जब रियासतें थीं, तो वे कई राजाओंके रजिस्टर (ग्रह-नक्षत्र, फल और उपाय) लिखते थे। अब वे उच्च स्तरकी पण्डिताई करते हैं। कुण्डली बनाने, भागवतकी कथा कहने और ग्रह-निवारण आदिके कार्य करते हैं। आज वे आये तो कहने लगे; इस वर्ष मैं मर जाऊँगा, मेरी कुण्डली सिद्ध पुरुषने बनायी है; इसका फल अवश्य घटेगा।

मैंने कहा—अभी आप दो वर्षोंतक जीवित रहेंगे; भक्तों और तान्त्रिकोंकी कुण्डली नहीं घटती है। कृतकर्मका फल भोगकर वे इस लोकसे विदा होते हैं। इसके लिये मृत्युका भी समय टल जाता है।

बात सच हुई; लगभग दो वर्षोंतक वे पद-विकारके कारण चारपाईपर पड़े रहते थे। वे तन्त्राचारका फल भोग रहे थे।

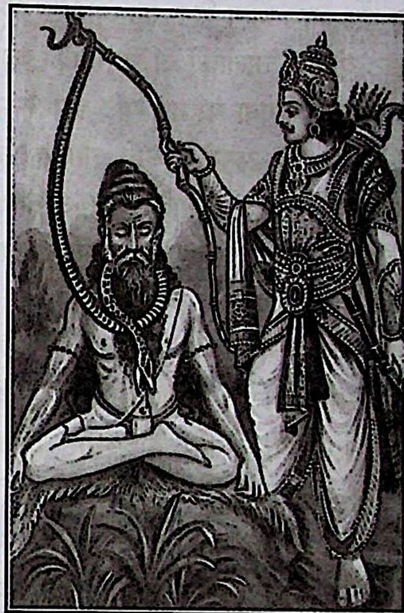
मैं जब दूसरी बार घर गया तो ज्वरसे अत्यधिक पीड़ित हो गया। शरीरका ताप बढ़ जाता था। दवाका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ रहा था। मैं बेचैन हो जाता था। आज जब पण्डितजी मुझको देखने आये तो उन्होंने नाड़ी और कुण्डलीको देखकर बड़ी गम्भीरतासे कहा—'शनि और राहुके प्रबल प्रकोपसे ये पीड़ित हैं; साढ़े सातीका अन्तिम चरण है; चढ़ती राजा, उतरती ग्रह बहुत कष्ट देते हैं। दो राजाओंकी कुण्डलियोंकी दशा यही थी; विविध उपक्रम हुए, पर वे बच न सके, मेरे भाईकी ग्रह-दशाएँ भी इसी स्तरकी थीं, मैं चाहते हुए नहीं बचा सका। इनकी नाड़ी-गति भी अच्छी नहीं है; भूमि-शय्या

करा दीजिये।'

मैं अब सुन रहा था, माँ सिरहाने बैठी थी। पिताजी मुझको नीचे उतारने लगे; तो माँ विरोध करने लगीं। मैंने कहा कि मैं मरूँगा नहीं; भगवान्‌में मेरी अडिग आस्था है।

पण्डितजी चले गये। मैं बुखारकी स्थिति ठीक होनेपर भक्तिपरक श्लोक पढ़ता रहा। सबेरे मेरे प्राइमरीके एक अध्यापक—जो चिकित्सक भी थे, गाँवमें किसीको दवा देने आये। उन्होंने मेरा समाचार पूछा, बीमारीका समाचार पाकर वे दुखी हुए और देखने आये। मैं बाहर पड़ी चारपाईपर बैठ गया। मास्टर साहबजीने मेरी नाड़ी देखी, छः रुपयेकी दवा दी और कहा—कलतक बुखार उतर जायगा। बात सच हुई और मैं मास्टरीकी लम्बी सेवा करके आपके सामने हूँ।

शिवपुराणको पढ़ते हुए मैंने राजा नहुषका वृत्तान्त पढ़ा—वे अंशकालिक इन्द्र हुए थे। इन्द्र होनेपर वे अपनेको संयमित नहीं रख सके; प्रभुता पानेपर उसका गर्व/अहंकार प्रायः लोगोंको हो जाता है। नहुष देवराज होनेपर भी अपने अवगुणों, कुकर्म और दुश्चरित्रताको छोड़ न सके। पुराने इन्द्रकी सभी सम्पदाओंपर वे अपना अधिकार करने लगे, यहाँतक कि शची (इन्द्राणी)-पर भी अपना अधिकार करना चाहा; उनके पास सन्देश दिया। शचीने सयाने लोगोंसे परामर्श किया, मुक्तिका उपाय पूछा, लोगोंने सलाह दी कि आप कह दीजिये कि 'आप ऋषियोंद्वारा उठाकर चलनेवाली पालकीसे आइये, तो मैं मिलूँगी।' इन्द्र नहुषने आदेश दिया और ऋषिगण सेवार्थ उपस्थित हो गये। कामातुर इन्द्र नहुष पालकीपर बैठकर शचीके भवनको चले। वे असंयमित, कामान्ध और अविवेकी हो गये थे। शीघ्र पहुँचनेके लिये आतुर नहुषने पैर पटकते हुए कहा—'सर्प-सर्प' (शीघ्र चलो) इसी दशामें उनके चरण अगस्त्य ऋषिको लगे—जो पालकीको ढो रहे थे। उन्होंने तमतमाकर शाप दे दिया; 'तुम अजगर होकर भूमिपर गिर पड़ो।' तत्काल वैसा ही हो गया, कर्मफल मिल गया। राजा परीक्षितको भी अपने कर्मोंका फल भोगना पड़ा। श्रीमद्भागवत अर्थात् श्रीकृष्णचरित-गुणगान-श्रवणसे उनको परमधाम जानेका अवसर मिला, पर अकाल मृत्यु तो हुई; समयपर तक्षक आया और उनको डँसा। यदि भगवत्कृपा न होती, तो वे रौरव नरकमें जाते, प्रेतयोनिको प्राप्त करते। ऋषिके



गलेमें मृत सर्पको डालनेका फल तो उनको मिला ही। कलिने उनसे स्वर्ण, वेश्यावृत्ति, जुआ-पाशा आदिमें रहनेकी अनुमति तो ली थी—फिर भी स्वर्ण-मुकुटको पहनकर वे आखेटके लिये गये। इसीसे उनका विवेक खो गया और वे सुकर्मके स्थानपर कुकर्म कर बैठे।

भाग्य और नियतिका प्रत्यक्षीकरण कर्मसे ही हो पाता है।

कथाओंके पीछे जो मूल उपदेश हैं—वही सत्य हैं; मनुष्यको तदनुसार कर्म करना चाहिये—जिससे वह बुरे कर्म और उसके बुरे फलसे बच सके। इसी कोटिके उदाहरण हमारे ही नहीं, बल्कि विश्ववाङ्मयमें भरे पड़े हैं और लोकजीवनमें भी देखनेको मिलते हैं; सबसे हमें सीख लेनी चाहिये।

अहंकार, स्वार्थ, ईर्ष्या-द्वेषमें मनुष्य आगेकी बातोंको न सोचकर तत्काल कार्य कर बैठता है, पर फल भोगते समय पश्चात्ताप करता है—जिसका कोई महत्त्व नहीं होता है। मानव, पशु, पक्षी आदि ही नहीं; देवी-देवता भी कर्मफलको भोगते हैं, अभिशापको भोगते हैं।

अभिशाप भी तो कर्मफल ही है।

**'नरो वा कुंजरो'** के विवादमें धर्मराज युधिष्ठिर आधा असत्य बोलनेके दोषी हुए, जिससे स्वर्ग जाते हुए उनको नरकके पासके रास्तेसे जाना पड़ा था, उसका दर्शन करना पड़ा था। आज लोग दिन-रात अगणित झूठ बोलते रहते हैं। झूठ बोलना चालाकी या चतुरताकी कोटिमें आ गया है, पर फल भोगना पड़ेगा, यदि इस जन्ममें फल नहीं भोग पायेंगे, तो अगले जन्ममें भोगना पड़ेगा।

भगवान् शिवके ज्योतिर्लिंगके आदि-अन्तके सन्दर्भमें भगवान् विष्णुने न जानकारी होनेपर सत्यभाषण किया, जबकि ब्रह्माजीने असत्य-भाषण; इसीलिये भगवान् विष्णु जगत्पूज्य हो गये जबकि ब्रह्माजी अपूज्य।

आजके समाजमें इन बातोंको कोई महत्त्व नहीं दे रहा है, नहीं तो इतने दुष्कर्म, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, हत्या, आत्महत्या, वाहन दुर्घटनाएँ आदि क्यों होतीं? शिक्षाको संस्कारसे जोड़नेपर इनमें कमी आ सकती है। आजकी लचर और दीर्घजीवी न्याय-व्यवस्थासे नाममात्रका प्रभाव पड़ रहा है। ध्यान देनेयोग्य बात यह है कि शिक्षित अपराधियोंकी संख्या अधिक होती जा रही है, जो शिक्षामें मूल्यहीनताकी ओर संकेत करती है।

आज मन्दिर, मस्जिद, तीर्थ, सुधारगृह, बाल संरक्षणगृह, विधवा निकेतन, अनाथालय, नारी निकेतन, विद्यालय, विश्वविद्यालय और समाज-कल्याण-संस्थाएँ सर्वत्र अपराधियोंकी घुसपैठ है। किसीको दण्ड-विधानकी परवाह नहीं रह गयी है। तथाकथित सन्त-महात्माओंके भी कारनामे नित्य सामने आ रहे हैं। किसीको लोक-परलोककी चिन्ता नहीं है। सत्ताको प्राप्त करनेके लिये शासक सर्वाधिक योग्य रहते हैं, पर प्राप्त करनेके उपरान्त सभी पूर्ववत् हो जाते हैं और सामान्यजन पूर्ववत् अलग-थलग पड़ा रह जाता है; क्या यह कर्तव्य-स्खलन, छल और स्वार्थसिद्धि नहीं है? अवश्य है। इसका बोध तब होता है—जब ऐसे लोगोंको सामान्यजन नकार देता है। समय सबको समझाता है, पर सभी समझ कहाँ पाते हैं? श्लोक कौन पढ़ता है; आज तो सभी विज्ञापन पढ़ते हैं। श्लोक पढ़े और संसारको खुली आँख और निर्मल मनसे देखे तो अवश्य ज्ञात हो जायगा कि—

**'क्व माता क्व पिता विद्धि क्व स्वामी क्व कलत्रकम्।**
**न कोऽपि कस्य चास्तीह सर्वेऽपि स्वकृतं भुजः॥'**

अर्थात् कौन किसकी माता और कौन किसका पिता है? कौन किसका स्वामी और कौन किसकी स्त्री है? यहाँपर कोई भी किसीका नहीं है; सभी अपने किये हुए कर्मका फल भोगते हैं (कोटिरुद्रसंहिता ६। २८)। हर प्राणी अपने शुभ-अशुभ कर्मोंका फल भोगता है—**'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।'**

इसलिये हमें दुष्कर्मोंसे बचना चाहिये, यही शान्ति-पथ है।

## राधामाधव-दोहावली

(श्रीदेवीचरणजी पाण्डेय 'चरण')

राधा मोहन एक संग, चले जमुन के तीर।
'चरण' चिह्न चूमा करे, बहे दृगन से नीर॥

राधा माधव एक संग, झूलें कदम की डार।
'चरण' रेख देखत रहूँ, अपलक बारंबार॥

राधा नटवर एक संग, नाचे कुंज मझार।
'चरण' नहीं भू पर रहे, सुनतहिं राग मल्हार॥

राधा श्याम दोऊ जने, गये महल वृषभान।
बोले राजा—'राधिके! तव सखि बड़ी सुजान'॥

राधा मुरलीधर दोऊ, आये नन्द के द्वार।
'सुत! तव यह गोरो सखा, है अतीव सुकुमार'॥

कृष्ण कृष्ण कहते रहो, कृष्ण गुणन की खान।
जिसके हिय में कृष्ण हैं, वह है देव समान॥

श्याम श्याम जपते रहो, श्याम सलोना गात।
श्यामरूप जब मन बसे, जीवन होत प्रभात॥

राधापति राधारमण, राधा को उर धार।
राधा कृष्ण कहो सदा, बन वीणा मय तार॥

# उदारतामें रस है

( ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज )

उदारतामें रस है। लेकिन उदारताका अर्थ लोगोंने यह मान लिया है कि थोड़ा दान दे दिया, तो उदार हो गये; थोड़ा शारीरिक काम कर दिया, तो उदार हो गये। यह तो ऐसा ही समझिये जैसे छोटी बच्चियाँ गुड्डे-गुड़ियोंका विवाह करके आनन्द लेती हैं। उदारताका असली अर्थ क्या है? उदारताका असली अर्थ है कि आप सुखीको देखकर प्रसन्न हो जायँ, दुखीको देखकर करुणित हो जायँ। क्या करुणामें रस नहीं है? पूछो किसी मनोवैज्ञानिकसे। क्या प्रसन्नतामें रस नहीं है? तो उदारतामें जो रस है, भोगमें नहीं है, सुखमें नहीं है। उनसे भी उत्कृष्ट रस है—शान्तिमें और उससे भी उत्कृष्ट रस है—स्वाधीनतामें। और स्वाधीनतासे उत्कृष्ट रस है, प्रेममें। ये चारों चीजें आपको प्राप्त हो सकती हैं—उदारता भी आपको प्राप्त हो सकती है, शान्ति भी आपको प्राप्त हो सकती है, स्वाधीनता भी आपको प्राप्त हो सकती है और प्रेम भी आपको प्राप्त हो सकता है। इस दृष्टिसे उदारता, शान्ति, स्वाधीनता और प्रेम—ये चार क्षेत्र हैं रसके। स्वाधीनका अर्थ है, अपनेमें अपनेको सन्तुष्ट कर लेना, 'पर' की अपेक्षा न रखना। पर आश्रयसे रहित, परिश्रमसे रहित स्वाधीनता होती है। इसीको जीवन-मुक्ति भी कहते हैं।

उदारता, अर्थात् करुणा और प्रसन्नता जब जीवनमें आ जाती है तो भोगकी रुचि और कामका नाश हो जाता है। भोगकी रुचिका नाश होनेसे योगरूपी शान्ति मिल जाती है और कामका नाश होनेसे स्वाधीनता मिल जाती है। किसी एक चीजके जीवनमें ठीक-ठीक उतरनेसे सब चीजें अपने-आप आ जायँगी। उदारताके जो दो पहलू बताये—करुणा और प्रसन्नता; तो प्रसन्नता तो स्वाधीन बना देती है और करुणा शान्ति प्रदान करती है। शान्ति और स्वाधीनता प्रेममें बदल जाती है। प्रेम ही प्रेम रह जाता है। प्रेम जिसके प्रति होता है, उसके लिये रसरूप होता है और प्रेमकी प्रतिक्रिया भी प्रेम ही होती है। तो प्रेमी और प्रेमास्पदका जो नित्य विहार है, यह मानव-जीवनकी पूर्णता है।

आप पौराणिक कथाओंको पढ़ो, मैं राय देता हूँ, हालाँकि मैंने नहीं पढ़ी है। तो आपको यह मालूम होगा और आप निर्णय नहीं कर सकेंगे कि श्रीराधारानी प्रेमी हैं या श्रीकृष्ण प्रेमी हैं। राधारानीके जीवनको देखें, तो मालूम होता है कि श्रीकृष्ण प्रेमास्पद हैं और राधारानी प्रेमी हैं और श्रीकृष्णके जीवनको देखें तो मालूम होता है कि राधारानी प्रेमास्पद हैं और श्रीकृष्ण प्रेमी हैं। गौरीमैयाके चरित्रको देखें तो मालूम होता है कि भगवान् सदाशिव प्रेमास्पद हैं और गौरीमैया प्रेमी हैं। अगर भगवान् सदाशिवके चरित्रको देखें तो मालूम पड़ेगा कि भगवान् सदाशिव प्रेमी हैं और गौरीमैया प्रेमास्पद हैं। जो मृतक मुण्डोंकी माला पहने हैं, वे कितने प्रेमी हैं। आपने किसी पुरुषको इतना प्रेमी नहीं देखा होगा कि मृतक स्त्रीको गलेमें पहन ले। यह जो जीवनका सत्य है, वेदोंका तथ्य है, उसको समझानेके लिये भगवान् व्यासने पुराण लिखे। आप पढ़े-लिखे लोग ग्रन्थोंको ज्यादा पसन्द करते हैं। इस तरह जरा पढ़ो पुराणको।

## अद्भुत उदारता

बंगालके सुप्रसिद्ध ब्रह्मसमाजी सत्पुरुष अघोरनाथजीके पिता श्रीयादवचन्द्र राय फारसी तथा संस्कृत भाषाके उच्चकोटिके विद्वान् थे, ईश्वरभक्त थे और अत्यन्त दयालु थे। वे बहुत ही त्यागी तथा परिग्रहरहित व्यक्ति थे। एक रात्रि उनके घरमें चोर घुसे। चोरोंने घरका एक-एक कोना छान मारा; किंतु ले जानेयोग्य कोई वस्तु उन्हें मिली नहीं। श्रीयादवचन्द्रजी जाग रहे थे। चोरोंकी गतिविधि देख रहे थे। वे धीरेसे उठे और चिलममें तम्बाकू भरकर हुक्का लिये चोरोंके सामने आ खड़े हुए। नम्रतापूर्वक बोले—'भाइयो! आपलोगोंने परिश्रम बहुत किया; किंतु लाभ कुछ नहीं हुआ। अब कृपा करके तम्बाकू तो पीते जाइये।' बेचारे चोर तो लज्जा और ग्लानिके मारे श्रीयादवचन्द्रजीके पैरोंपर ही गिर पड़े।

# संत-वचनामृत

( वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे )

❀ शास्त्रोंमें प्रभु-प्राप्तिके भिन्न-भिन्न उपाय बताये गये हैं, उनमें चार मुख्य हैं। यथा—कर्म, योग, ज्ञान, भक्ति। इन चारमें कौन मार्ग सर्वश्रेष्ठ है, जिसपर सभी चल सकें। इस सम्बन्धमें बहुत ही विचार-विमर्शके बाद गुरुजनोंने भागवतपुराण आदिके आधारपर यह निर्णय किया कि उक्त चार वर्णित मार्गोंमें भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है। श्रीकृष्ण-भक्तिको प्राप्त कर लेनेके बाद फिर कुछ पाना शेष नहीं रह जाता है। भक्तिके रहस्यको जान लेनेके बाद फिर कुछ जानना बाकी नहीं रह जाता है। श्रीनारद, वेदव्यास, कपिल आदि सभीके मतसे भक्ति श्रेष्ठ है। मायाके बन्धनसे छूटकर कृष्णप्राप्ति या कृष्णसेवाप्राप्तिका एकमात्र प्रमुख उपाय भक्ति है। भक्ति श्रीकृष्णके पास पहुँचती है। भक्ति श्रीकृष्णका दर्शन एवं अनुभव कराती है। भक्तिके वशमें श्रीकृष्ण रहते हैं, इसलिये भक्ति ही श्रेष्ठ है।

❀ भगवान् श्रीकपिलदेवजीने अपनी माता देवहूतिजीको बताया—'मेरे गुण और चरित्रोंके श्रवण करनेसे, मेरे नामोंका कीर्तन करनेसे, मेरे रूपका ध्यान करनेसे, मेरे भक्तोंके साथ सत्संग करनेसे, मेरे भक्तोंकी सेवा करनेसे, शास्त्रमर्यादाका पालन करनेसे, पिता-माता आदिकी सेवा करनेसे, सत्य, ब्रह्मचर्य, अहिंसाव्रतका पालन करनेसे, अहन्ता-ममताको त्यागनेसे भक्ति प्राप्त होती है। भक्ति होनेपर मनमें यह शुद्ध भाव दृढ़ हो जाता है कि भगवान् हमारे स्वामी हैं, हम भगवान्के दास हैं। हमारा शरीर, हमारा परिवार, हमारा सब कुछ भगवान्का है। सब कुछके रक्षक भगवान् हैं। जो कुछ सुख-दुःख मिलता है, उसमें भगवान्की कृपा ही मुख्य है।

❀ भक्त भक्ति प्राप्त करके श्रीकृष्णसे कुछ माँगता नहीं है; क्योंकि भक्तकी सब जरूरतोंको भगवान् जानते हैं। बिना माँगे ही भगवान् जो आवश्यक है, उसे देते हैं। भक्तिके इस जन्मके संस्कार अगले जन्मतक नष्ट नहीं होते हैं। वैष्णव वेषभूषाको धारण करनेवालेके पास भूत-प्रेत आदि बाधाएँ नहीं आती हैं। प्रातः शीघ्र उठकर स्नान करके कुछ भजन-पूजन-नमस्कार करके अन्य व्यवहार, व्यापार करना चाहिये। सायं-प्रातः एवं सोनेसे पहले और जागनेके बाद प्रभुका स्मरण अवश्य करना चाहिये। इसके बाद जब यह अभ्यास बढ़ जाता है, तब हर समय प्रभुकी याद आती है, उनका नाम जिह्वापर आता है।

❀ सत्संगमें सबसे पहले प्रार्थना करनी चाहिये। प्रार्थनाका तात्पर्य है—प्र=प्रकृष्ट अर्थात् श्रेष्ठ, अर्थना=अर्चना। प्रार्थना श्रेष्ठ पूजन है। अपनी जानकारीमें जो सबसे श्रेष्ठ और श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ जो वस्तु हो, उसे पानेके लिये तीव्र अभिलाषाका, उसके न मिलनेपर जो व्याकुलता हो उसके प्रकट करनेका, इष्ट सिद्धिका जो प्रयास है उसे ही प्रार्थना कहते हैं। जिसे सबसे अधिक प्रिय मानते हो, जिसे सर्वोत्तम सत्य मानते हो, जिसमें सर्वोत्तम आनन्द मानते हो, उसे अपने जीवनमें, हृदयमें, अपने समक्ष प्रकट करनेकी इच्छाको पूर्ण करनेके लिये प्रार्थना करनी चाहिये।

❀ प्रार्थनामें चार बातें होती हैं, होनी चाहिये—

❀ यह भाव मनमें रहे कि हम अपनी बुद्धिसे, अपने साधनोंसे, आपको, आपके प्रेमको प्राप्त नहीं कर सकते, ऐसा दैन्य अपनेमें चाहिये।

❀ हम जिससे प्रार्थना कर रहे हैं, वह हमारा इष्टदेव दयालु, कोमलहृदय, सर्वत्र है, उदार है; अपने दासकी सात्त्विक इच्छाको पूर्ण करनेवाला है, हमारा हितकारी है, उससे ज्येष्ठ-श्रेष्ठ कोई नहीं है। उसकी भक्ति आवागमनसे, मायाचक्रसे छुड़ानेवाली है। उसमें पूर्ण विश्वास हमारा हो।

❀ तीसरी बात यह है—प्रार्थना करते समय मनसे एकाग्र होकर तन्मय हो जाना चाहिये।

❀ तन्मय होनेपर वासना आदि विकार नहीं रह जाते हैं। जैसे प्रभु रखें, उसी प्रकार मैं रहूँगा, यह भाव चाहिये। [ 'परमार्थ के पत्र-पुष्प'से साभार ]

# साधनोपयोगी पत्र

(१)

## नाम-जपमें दृढ़ विश्वास रखें

प्रिय महोदय! सादर सप्रेम हरिस्मरण। आपने लिखा कि नाम-जपमें भूलें बहुत होती हैं और इसका कारण आपके पुरुषार्थकी कमी है, सो पुरुषार्थ तो अपने हाथकी वस्तु है, उसमें कमी नहीं आने देना चाहिये। भगवान्के भजनका मर्म और प्रभाव जान लेनेपर पुरुषार्थमें कमी नहीं आ सकती। परंतु जबतक ऐसा न हो तबतक विश्वास करके ही नाम-जपका तीव्र अभ्यास करना चाहिये।

आपने लिखा कि समय बीत रहा है, सो समय तो बीतेगा ही। पर जितना समय भजन-ध्यानके बिना बीतता है, वही बीतता अर्थात् नष्ट होता है। भजन-ध्यानमें बीता हुआ समय बीतता नहीं, वह तो स्थिर हो जाता है। बिना भजनके जो समय बीते, उसके लिये पछतावा होना चाहिये। सब समय भगवान्की याद बनी रहे, इसके लिये पूरी चेष्टा करनी चाहिये। इस प्रकार प्राणपणसे चेष्टा होगी तो भूल अवश्य ही कम होगी।

भगवान्से प्रेम होनेपर आप-से-आप संसारसे प्रेम हट जायगा। प्रसन्न मनसे बहुत दिनोंतक भजनका तीव्र अभ्यास करनेपर भगवान्के नाममें प्रीति हो सकती है। यदि प्रीतिपूर्वक भजन न हो तब भी निरन्तर भजन करनेकी चेष्टा जोरसे होनी चाहिये। फिर कोई आपत्ति नहीं। समय अनमोल है, इसलिये उसे अनमोल काममें ही लगाना चाहिये। बहुत सचेत होकर रहना चाहिये। मृत्यु किसीको पहले खबर नहीं देती, इसलिये सब समय नारायणका आसरा पकड़े रहना चाहिये। जो सच्चिदानन्दका चिन्तन करते हुए मरेगा, उसकी कुछ भी हानि न होगी। अतः एक पल भी कालका विश्वास मत कीजिये और निरन्तर भजन करते जाइये। शेष प्रभुकृपा।

(२)

## समयका मूल्य पहचानें

प्रिय महोदय! सादर सप्रेम हरिस्मरण। जो समयका मोल जानता है, वह कभी भी कालके द्वारा नहीं मारा जा सकता; क्योंकि वह कभी कालका विश्वास ही नहीं करेगा। फिर उसको काल धोखा कैसे दे सकता है? जो कालको अच्छी तरह नहीं जानता, वही उसके धोखेमें पड़ता है। उसीका नाश काल करता है। काल अचानक आता है। जिस प्रकार चूहेको बिल्ली पकड़ती है, उसी प्रकार मौत भी जीवको अचानक पकड़ लेती है। इस बातको जो जान लेगा, वह सब समय नारायणके चिन्तनकी शरण पकड़े रहेगा, एक पल भी उसे छोड़ेगा नहीं। वह भगवान्के नामका स्मरण करता हुआ मरेगा, फलतः भगवान्को प्राप्त कर लेगा, मृत्युरूपी संसार-सागरमें नहीं डूबेगा। मृत्यु उसे कभी मार न सकेगी। वही मनुष्य धन्यवादका पात्र है, जिसका ध्यान हर समय भगवान्में लगा रहता है। जो हर समय भगवच्चिन्तन करता रहता है, उसको जीवन्मुक्तिकी क्या आवश्यकता है? वह पुरुष तो दर्शन करनेलायक है, उसका दर्शन करनेसे पापी भी पापसे मुक्त हो जाता है और उसके जरिये न जाने कितने जीवन्मुक्त हो जाते हैं। उसकी जीवन्मुक्ति तो कभीकी हो गयी रहती है।

(३)

## सांसारिक चिन्तनसे बचें

प्रिय महोदय! सादर सप्रेम हरिस्मरण। आपने लिखा कि समय बहुत फालतू जाता है और भजन बहुत कम होता है, सो ऐसा क्यों होता है? इसका कारण संसारी आदमियोंका संग और संसारी वस्तुओंका चिन्तन ही मालूम होता है। भगवान्में प्रेम कम होनेके कारण ही भजन कम होता है। यह शरीर एक दिन मिट्टीमें मिल जायगा। इसको बचानेका कोई उपाय नहीं है, कारण कि यह अपना नहीं है; केवल यही नहीं, संसारके सारे पदार्थ नाश होनेवाले हैं। केवल श्रीनारायण ही सत्य, सनातन,

अविनाशी और आनन्दरूप हैं। अतः उन्हींकी शरण लेनी चाहिये। श्रीभगवान्‌का दर्शन प्राप्त हुए बिना संसारके जालसे कभी छुटकारा नहीं मिल सकता। श्रीभगवान् प्रेमके अधीन हैं। इसलिये जिस प्रकार हो श्रीनारायणसे जल्दी-से-जल्दी पूर्ण प्रेम करनेकी चेष्टा जोरसे करनी चाहिये। तुम्हारे पास जितनी भी चीजें हैं, सबको श्रीनारायणको पानेमें लगा देना चाहिये। पीछे श्रीनारायण स्वयं हाजिर हो सकते हैं। शेष प्रभुकृपा।

(४)

## भजन-ध्यान और सत्संगका निरन्तर अभ्यास करें

प्रिय महोदय! सादर सप्रेम हरिस्मरण। भजन-ध्यान और सत्संगके लिये हर समय चेष्टा रखनेसे ही सब काम बन सकते हैं। इस चेष्टाका बहुत दिनोंतक निरन्तर अभ्यास करते रहनेसे भली-भाँति भजन-ध्यान और सत्संग होने लगता है। संसारमें भजन-ध्यान और सत्संगके बराबर और कोई लाभ नहीं है। मनुष्यको विचार करना चाहिये कि मैं इस संसारमें किसलिये आया हूँ? कौन हूँ? मेरा काम क्या है और करता क्या हूँ? मैं जो कुछ करता हूँ, वह सब ठीक है या नहीं? इस प्रकार विचार करके जिसके द्वारा हमारा परम कल्याण हो, वही करना चाहिये। यदि विचारनेसे हमारा वर्तमान कर्म ठीक नहीं जँचता तो जो ठीक हो, वही करना चाहिये। आलस्य और प्रमादका शिकार नहीं होना चाहिये। अपने अनमोल समयको अनमोल काममें ही बिताना चाहिये। शेष प्रभुकृपा।

(५)

## भगवद्भक्तोंका संग करें

आपने लिखा कि परमात्माका स्मरण बहुत कम होता है, सो ठीक है। इस बारेमें मैं पहले पत्र लिख चुका हूँ। आपका समय परमात्माके चिन्तनमें नहीं बीतता, इसका कारण आप जानिये। मैं दूर बैठा हुआ किस प्रकार आपकी भूलोंके सम्बन्धमें ठीक अनुमान कर सकता हूँ? या तो आपको सांसारिक झंझटें अधिक रहती हैं या भगवद्भक्तोंका संग बहुत कम प्राप्त होता है। प्रधानरूपसे तो इन्हीं दो कारणोंका अनुमान मैं कर सकता हूँ। आपको अपनी त्रुटियोंपर स्वयं विचार करना चाहिये। इस जीवनका क्या ठिकाना है? आपके पीछे साधनमें लगनेवाले कई लोग आपसे आगे बढ़ गये। शुरू-शुरूमें आपकी बड़ाई कुछ ज्यादा हुई, उससे आपके मनमें अभिमान तो नहीं उत्पन्न हो गया? जो कुछ हुआ, सो हुआ; यदि आप अब भी चेत जायँ और निरन्तर भजन-ध्यानके लिये चेष्टा करें तो अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। अब भी सब बातें बन सकती हैं। अन्य बहुत-से भाइयोंका उत्तम और तीव्र साधन देखकर आपके मनमें उत्साह क्यों नहीं होता? यदि कहें कि कुछ होता है तो वह नहींके समान है; क्योंकि जब उत्तेजनाके अनुसार कार्य नहीं होता तो वैसी उत्तेजना किस कामकी? अवश्य ही बिलकुल न होनेकी अपेक्षा तो थोड़ा उत्साह भी होना अच्छा है। पर वह दूसरे उत्साही भजनकर्ताओंसे होड़ लगाकर उनसे आगे बढ़ानेवाला नहीं है। यदि आपके हृदयमें भगवान्‌पर पूरा विश्वास है। तो आप भगवद्भजनमें एक पलकी भी ढील किसलिये कर रहे हैं? यदि आप संसारको सचमुच मिथ्या समझते हैं तो फिर इस स्वप्नतुल्य संसारके लिये अपना अनमोल समय किसलिये बिता रहे हैं? यदि संसारका मिथ्यात्व पूरी तरह समझमें न आये तो यह क्षणभंगुर तो प्रत्यक्ष ही देखनेमें आता है। एक श्रीनारायणको छोड़कर कोई वस्तु ऐसी नहीं है, जो क्षणभंगुर न हो। फिर शरीरकी तो बात ही क्या है? अतः जब इस शरीरका नाश अवश्यम्भावी है, तब इसके भस्म होनेके पहले ही जो कुछ आपको करना हो शीघ्रतासे कर लेना चाहिये। इस संसारमें आपको किस चीजकी जरूरत है, किस बातका अभाव है, जिसके लिये आप अपने अनमोल समयको भगवान्‌के भजन-ध्यानरूपी अनमोल काममें निरन्तर नहीं लगा रहे हैं? शेष प्रभुकृपा।

# व्रतोत्सव-पर्व

## सं० २०७६, शक १९४१, सन् २०१९, सूर्य उत्तरायण-दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, श्रावण कृष्णपक्ष

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा रात्रिमें ३। ४ बजेतक | बुध | उ०षा० रात्रिमें १०।३० बजेतक | १७ जुलाई | कर्कसंक्रान्ति दिनमें ३। ४३ बजे, सूर्य दक्षिणायन प्रारम्भ। |
| द्वितीया रात्रिशेष ४।४१ बजेतक | गुरु | श्रवण " १२। ४० बजेतक | १८ " | × × × × × |
| तृतीया अहोरात्र | शुक्र | धनिष्ठा " ३। ७ बजेतक | १९ " | भद्रा सायं ५। ३८ बजेसे, कुम्भराशि दिनमें १। ५४ बजेसे, पञ्चकारम्भ दिनमें १। ५४ बजे। |
| तृतीया प्रातः ६।३५ बजेतक | शनि | शतभिषा अहोरात्र | २० " | भद्रा प्रातः ६। ३५ बजेतक, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ९। १८ बजे, पुष्यका सूर्य रात्रिशेष ४। ० बजे। |
| चतुर्थी दिनमें ८।३६ बजेतक | रवि | शतभिषा प्रातः ५। ४५ बजेतक | २१ " | मीनराशि रात्रिमें १। ४१ बजे। |
| पंचमी " १०।३६ बजेतक | सोम | पू०भा० दिनमें ८। २१ बजेतक | २२ " | श्रावण सोमवारव्रत। |
| षष्ठी " १२।२१ बजेतक | मंगल | उ० भा० " १०। ४५ बजेतक | २३ " | भद्रा दिनमें १२। २१ बजेसे रात्रिमें १। ५ बजेतक, सायन सिंहका सूर्य रात्रिमें ७। ३२ बजे, मूल दिनमें १०। ४५ बजेसे। |
| सप्तमी " १।४८ बजेतक | बुध | रेवती " १२। ५० बजेतक | २४ " | मेषराशि दिनमें १२। ५० बजेसे, पञ्चक समाप्त दिनमें १२। ५० बजे। |
| अष्टमी " २।४७ बजेतक | गुरु | अश्विनी " २। ३१ बजेतक | २५ " | मूल दिनमें २। ३१ बजेतक। |
| नवमी " ३। १९ बजेतक | शुक्र | भरणी " ३। ४३ बजेतक | २६ " | भद्रा रात्रिमें ३। १९ बजेसे, वृषराशि रात्रिमें ९। ५३ बजेसे। |
| दशमी " ३। २० बजेतक | शनि | कृत्तिका दिनमें ४। २५ बजेतक | २७ " | भद्रा दिनमें ३। २० बजेतक। |
| एकादशी " २।५० बजेतक | रवि | रोहिणी " ४। ३६ बजेतक | २८ " | मिथुनराशि रात्रिशेष ४। २८ बजेसे, कामदा एकादशीव्रत (सबका)। |
| द्वादशी " १। ५१ बजेतक | सोम | मृगशिरा " ४। २१ बजेतक | २९ " | सोमप्रदोषव्रत, श्रावण सोमवारव्रत। |
| त्रयोदशी " १२।२७ बजेतक | मंगल | आर्द्रा " ३। ३९ बजेतक | ३० " | भद्रा दिनमें १२। २७ बजेसे रात्रिमें १। ३४ बजेतक। |
| चतुर्दशी " १०।४३ बजेतक | बुध | पुनर्वसु " २। ३९ बजेतक | ३१ " | कर्कराशि दिनमें ८। ५५ बजेसे, श्राद्धकी अमावस्या। |
| अमावस्या " ८।३९ बजेतक | गुरु | पुष्य " १। २० बजेतक | १ अगस्त | अमावस्या, मूल दिनमें १। २० बजेसे। |

## सं० २०७६, शक १९४१, सन् २०१९, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, श्रावण शुक्लपक्ष

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा प्रातः ६।२४ बजेतक | शुक्र | आश्लेषा दिनमें ११।५१ बजेतक | २ अगस्त | सिंहराशि दिनमें ११। ५१ बजेसे, धर्मसम्राट स्वामी करपात्री-जयन्ती। |
| तृतीया रात्रिमें १।२९ बजेतक | शनि | मघा " १०। १३ बजेतक | ३ " | मूल दिनमें १०। १३ बजेतक, आश्लेषाका सूर्य रात्रिशेष ४। २० बजे। |
| चतुर्थी " ११। २ बजेतक | रवि | पू०फा० " ८। ३२ बजेतक | ४ " | भद्रा दिनमें १२। १६ बजेसे रात्रिमें ११। २ बजेतक, कन्याराशि दिनमें २। ८ बजेसे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत। |
| पंचमी " ८।४० बजेतक | सोम | उ०फा० प्रातः ६। ५४ बजेतक | ५ " | नागपञ्चमी, श्रावण सोमवारव्रत। |
| षष्ठी सायं ६।२९ बजेतक | मंगल | चित्रा रात्रिशेष ४। ६ बजेतक | ६ " | तुलाराशि दिनमें ४। ४५ बजेसे। |
| सप्तमी दिनमें ४।३३ बजेतक | बुध | स्वाती रात्रिमें ३। ५ बजेतक | ७ " | भद्रा दिनमें ४। ३३ बजेसे रात्रिमें ३। ४४ बजेतक, गोस्वामी श्रीतुलसीदास-जयन्ती। |
| अष्टमी " २।५६ बजेतक | गुरु | विशाखा " २। २४ बजेतक | ८ " | वृश्चिकराशि रात्रिमें ८। ३४ बजेसे। |
| नवमी " १।४३ बजेतक | शुक्र | अनुराधा " २। ८ बजेतक | ९ " | मूल रात्रिमें २। ८ बजेसे। |
| दशमी " १२।५५ बजेतक | शनि | ज्येष्ठा रात्रिमें २। २० बजेतक | १० " | भद्रा रात्रिमें १२। ४६ बजेसे, धनुराशि रात्रिमें २। २० बजेसे। |
| एकादशी " १२।३७ बजेतक | रवि | मूल रात्रिमें ३। २ बजेतक | ११ " | भद्रा दिनमें १२। ३७ बजेतक, पुत्रदा एकादशीव्रत (सबका), मूल रात्रिमें ३। २ बजेतक। |
| द्वादशी " १२।५० बजेतक | सोम | पू०षा० रात्रिशेष ४। १५ बजेतक | १२ " | सोमप्रदोषव्रत, श्रावण सोमवारव्रत। |
| त्रयोदशी " १।३५ बजेतक | मंगल | उ०षा० अहोरात्र | १३ " | मकरराशि दिनमें १०। ४१ बजेसे। |
| चतुर्दशी " २।४७ बजेतक | बुध | उ०षा० प्रातः ५। ५५ बजेतक | १४ " | भद्रा दिनमें २। ४७ बजेसे रात्रिमें ३। ३५ बजेतक, व्रतपूर्णिमा। |
| पूर्णिमा " ४।२३ बजेतक | गुरु | श्रवण दिनमें ८। १ बजेतक | १५ " | स्वतंत्रता दिवस, कुम्भराशि रात्रिमें ९। १३ बजेसे, पूर्णिमा, रक्षाबन्धन (राखी), श्रावणी, पञ्चकारम्भ रात्रिमें ९। १३ बजे। |

# कृपानुभूति

## 'जय जगन्नाथ स्वामी'

मैं ग्राम कमताना, जिला पन्ना मध्यप्रदेशका निवासी हूँ। बात सन् १९५४ ई० की है। जब मैं करीब ३ वर्षका था। मेरे पिताजी गाँवके सामाजिक फौजदारीके झगड़े पुलिसके माध्यमसे निपटा दिया करते थे, जिसमें कुछ लाभांश पुलिसद्वारा मिल जाया करता था। एक दिन एक गरीब कोरीका केस पुलिसके समक्ष आया। उस केसको सुलझानेमें उस गरीबको अपनी खानेकी थाली भी बेचनी पड़ी। उसने थाली बेचकर प्राप्त रुपयोंसे पुलिसको सन्तुष्ट किया, जिसका लाभांश पिताजीको भी मिला। उसी रात मैं स्वस्थ सोया था, सुबह जब नींद खुली तो मैं लकवाग्रस्त हो चुका था। मेरा दाहिना अंग शून्य हो गया। मेरा इलाज जिला अस्पताल पन्नामें हुआ, लेकिन मैं रोगमुक्त नहीं हुआ और माता-पिताके लिये भार बन गया। कुछ दिन बाद पिताजीको पता चला कि उस कोरीको पुलिसको खुश करनेमें खानेकी थाली भी बेचनी पड़ी, तब पिताजीको आभास हुआ कि उस गरीबकी आहके कारण मेरे बेटेको लकवा लगा। तब उन्होंने प्रायश्चित्तस्वरूप भगवान्से क्षमा माँगी तथा मनमें शपथ ली कि आजके बाद ऐसे अनर्थसे उपार्जित धनको मैं अपने घरमें नहीं आने दूँगा; साथ ही उस गरीब कोरीकी मदद भी की।

मेरे घरमें गंगोत्रीसे लाया हुआ गंगाजल रखा था, उन्होंने उसे हाथमें लेकर प्रायश्चित्तस्वरूप भगवान्से क्षमा माँगी। माताजी, पिताजी तथा गाँव एवं आसपासके कुछ लोगोंका तीर्थाटन, देवदर्शनका प्रोग्राम था, लेकिन मेरे कारण पिताजी माताजीको छोड़कर अकेले ही जानेको तैयार हुए। तब माताजीने कहा कि इस बच्चे (मेरा)-के जीवनका भरोसा नहीं है, इसे भी तीरथ करा दें और जिद करके वे सब लोगोंके साथ चल दीं। वे करीब १२ कि०मी० पैदल चलीं। उस समय मेरा छोटा भाई माँके पेटमें था। माताजीने मुझे सिखा दिया था कि जब कोई देवस्थान या मन्दिर मिले तो भगवान्से निवेदन करना कि भगवान् मुझे खड़ा कर दो और इस प्रकार वैद्यनाथधाम होते हुए हम सब लोग जगन्नाथपुरी पहुँचे। पुरी मन्दिरमें भगवान् जगन्नाथके दूरसे दर्शन हुए। मैंने भगवान्से निवेदन किया कि मुझे खड़ा कर दो। अन्दर भीड़ देखकर सब लोगोंने कहा कि यहीं इन्तज़ार कर लेते हैं तो सब लोग बैठ गये। मैं माताजीकी गोदमें था। मैं माताजीको 'बऊ' बोलता था। मैंने बऊसे कहा कि मैं खड़ा हो जाऊँ तो माँने कहा कि हो जाओ और मैं गोदसे उतरकर खड़ा हो गया फिर बोला 'बऊ! चलूँ' तो माताजी पीछे रहीं और मैं १०-१५ कदम चल दिया। तीर्थयात्रामें आये अन्य लोगोंने पिताजीसे कहा कि महाराज, आपकी तीर्थयात्रा सफल हो गयी और इस प्रकार जगन्नाथजीकी कृपासे मैं चलने लगा। वहाँसे सभी लोग रामेश्वरम्‌में जल चढ़ाकर एवं दर्शनकर फिर द्वारकाधीशके दर्शनकर वापस घर आ गये। जगन्नाथजीकी कृपासे मैं अपने बड़े भाई, जो मुझसे २ वर्ष बड़े थे, उनके साथ स्कूल जाने लगा एवं उन्हींकी क्लासमें पढ़ने लगा। बादमें शासकीय पॉलिटेक्निक नौगाँवसे सिविल इंजीनियरिंगका डिप्लोमा उत्तीर्णकर मध्यप्रदेशमें उप-अभियन्ताके पदपर नियुक्त हो गया। अन्तमें बिलासपुर छत्तीसगढ़में सहायक अभियन्ताके पदसे सेवानिवृत्त होकर सुखी जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। मैं मानता हूँ कि यह सब भगवान् जगन्नाथ स्वामीकी कृपासे ही सम्भव हुआ। भगवान्ने ही मेरे पिताजीको सही रास्तेपर लानेके लिये मुझे लकवाग्रस्त कर दिया और पुनः अपनी कृपासे ठीक भी कर दिया। बोलिये—'जगन्नाथ स्वामीकी जय!'

—हरीशंकरजी पयासी

# पढ़ो, समझो और करो

## (१)

## विश्वासघातका फल

कुछ उग्र कर्मोंका फल इसी जन्ममें हाथोहाथ मिल जाता है, इसी तरहकी एक घटनाका यहाँ उल्लेख किया जा रहा है—

हमारे एक परिचित बन्धु ……में रहते हैं। उस समय उनके साथ उनकी एक विधवा बहन और दसवर्षीय भानजा भी रहता था। बहन विधवा है और बच्चा नादान है, ऐसा समझकर उन्होंने उसे अपने पास रख लिया था। कई वर्षोंसे वे लोग साथ रहते चले आ रहे थे। भाईके कोई सन्तान न थी, अतः मनकी सारी ममता भानजेके पक्षमें आयी; उन्होंने उसे कभी भी किसी भी वस्तुके अभावकी अनुभूति नहीं होने दी। स्वयं मितव्ययी और कुछ सीमातक कृपण होते हुए भी भानजेके मामलेमें उनकी हथेलीमें छिद्र हो जाया करता था।

आठ वर्ष पूर्व उन्हें गैसकी भयंकर शिकायत रहने लगी। वैसे तो यह बीमारी उन्हें गत बीस वर्षोंसे थी; किंतु आठ वर्ष पूर्व तो उसने उग्र रूप धारण कर लिया था। ऐसी स्थितिमें उन्होंने बीमारीका जमकर इलाज करनेकी सोची। दुकानको बहन और भानजेके सुपुर्दकर जिसने जो जगह सुझायी, वहीं जा पहुँचे। इलाजके सिलसिलेमें वे हमारे शहरमें भी पधारे थे। भानजेकी चिट्ठी हर सप्ताह या पन्द्रह दिनोंमें अवश्य प्राप्त हो जाती थी। उसमें केवल एक ही प्रकारके शब्द रहते थे—'कुशल है और यही आशा करते हैं। इलाज जमकर करवाना। इधरकी फिकर मत करना, दुकानका कार्य सुचारु रूपसे चल रहा है।'

बस, ***'संत हृदय नवनीत समाना।'*** जानेकी जल्दी उन्होंने नहीं की। पूरे पाँच माहतक उन्होंने जमकर इलाज करवाया। आखिर लौट गये वे अपने शहरको—सर्वांशमें नहीं तो, अधिकांशमें वे रोगमुक्त हो चुके थे।

स्टेशनपर उन्हें भानजा मिला। बड़े प्रेमसे उसने चरण-स्पर्श किया। तत्पश्चात् कुछ कामको निपटाकर शीघ्र ही घर आनेको कहकर चल दिया। ये घर आ गये, किंतु यह क्या, घर तो वीरान हो चुका है। पचास-साठ हजारके मालकी दुकानमें कठिनाईसे पाँच-छः सौका माल बचा था। घर और दुकान पूरी तरह विधवाकी माँग बन चुके थे। भानजा लौटकर नहीं आया। तत्पश्चात् काफी समयतक उसका पता भी न चला। बहनसे घर-दुकानकी दुर्दशाका कारण पूछा तो उत्तर मिला कि उसने तो स्वयं गत छः माहसे खाट पकड़ रखी है। बाजारमें साख समाप्त हो चुकी थी। घरकी एक अलमारीमें खाली बोतलोंका ढेर लगा पाया। किसी-किसी जगह अभक्ष्य पदार्थके अवशेष भी दीख पड़े। इनका हृदय हाहाकार कर उठा—'माधव! यह तेरी क्या लीला है? मैं यह क्या देख रहा हूँ।' कहकर इन्होंने आँखें मींच लीं। दिल थाम लिया और फफक-फफककर रो पड़े। पास-पड़ोसके लोग आये। ऊपरी सहानुभूति दिखलायी। साथ ही सख्त कार्यवाही करनेका अमूल्य परामर्श भी दे दिया। इनसे अब घरकी दशा देखी नहीं जाती थी, घरका कोना-कोना इन्हें अपनी करुण कहानी कहता-सा प्रतीत होता था। साथ ही उस उद्दण्ड और पापात्मा भानजेको दण्ड दिलवानेका मौन संकेत भी कर रहा था। कण-कण चीत्कार कर रहा था। मौका देखकर बहन भी एक दिन अपने दूरके श्वशुरगृह (कलकत्ते) खिसक गयी। कुछ लोगोंने एक अर्जी लिखी और उन्हें उसपर केवल हस्ताक्षर करनेको कहा। बाकी कार्रवाई करनेका उत्तरदायित्व उन्होंने स्वयं स्वीकार किया। अर्जीपर हस्ताक्षर कर दिये गये। लोग पुलिस-स्टेशनकी तरफ रवाना हुए। थाना अभी थोड़ी दूर ही रह गया था कि ये आँधीकी तरह दौड़े आये और अर्जी लेकर शीघ्रतासे वापस लौट गये। अर्जीके इन्होंने टुकड़े-टुकड़े कर दिये। बहन और भानजेको इन्होंने क्षमा कर दिया।

किंतु लीलाधर इस क्षमादानको सहन न कर सके। जिस प्राणीको हम किन्हीं कारणोंसे दण्ड देना नहीं चाहते अथवा चाहते हुए भी नहीं दे पाते, उसको दण्ड देनेके

लिये स्वयं जगन्नियन्ताको व्यवस्था करनी पड़ती है।

कुछ समय पश्चात् इनको कलकत्तेसे एक पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें बहनके लकवा हो जानेके समाचार लिखे थे। कुछ दिनों पश्चात् उसके काल-कवलित हो जानेकी सूचना मिली इन्हें। इनको मर्मान्तक वेदना हुई। अभी इस वेदनाका घाव भरा भी नहीं था कि इधर भानजेके विषपान करनेके समाचार प्राप्त हुए।××× से चले जानेपर उसकी पीठमें एक छिद्र हो गया था, जिसमेंसे चौबीसों घंटे मवाद-रक्त आदि रिसते रहते थे। पैसा पासमें था नहीं। कुछ रोगके कारण और कुछ आत्मग्लानिवश उसने विषपान कर लिया था। किंतु विधाताके घर अभी उसके लिये ठौर नहीं थी, सो प्राणान्त न हो सका। हाँ, विषके तीक्ष्ण प्रभावसे सारे शरीरपर सफेद-सफेद निशान बन गये थे। बादमें उनसे एक प्रकारका बदबूदार पानी भी बहने लगा। इन्होंने सुना तो कलकत्ते भागे। उसकी दशा देख कलेजा मुँहको आता था। खूब दौड़-धूप की; किंतु अन्ततोगत्वा उसे मौतके मुँहमेंसे न निकाल सके। उधर एक नौकर, जो उनकी दुकानपर था और उस पापकर्ममें सम्मिलित था, बम्बई भाग गया; वहाँ लोकल ट्रेनसे असावधानीवश अपनी दोनों टाँगें गँवा बैठा। इन्होंने सुना तो पछाड़ खाकर गिर पड़े। बोले—'लीलाधर! लीला समेटो, बहुत हुआ; अब नहीं देखा-सहा जाता। आखिर सारा दण्ड उनको ही क्यों मिलना चाहिये? मैं भी तो उसमें भागीदार हूँ। भात बिखेरकर कौओंको न्यौता तो मैंने ही दिया था। मैंने ही कुछ समझदारीसे काम लिया होता तो आज यह काण्ड क्यों देखनेको मिलता। अन्तर्यामी! बच्चे नादान थे। अज्ञानवश दुष्कर्म कर बैठे।'—कहते हुए वे बच्चेकी तरह फूट-फूटकर रो पड़े। तत्पश्चात् किसीको भेजकर उन्होंने नौकरको अपने पास बुलवाया और अपनी दुकानपर पुनः शरण दी।

आज उस बातको काफी समय बीत चुका है। अपने अध्यवसाय और लगनसे इन्होंने पुनः अपनी खोयी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है। किंतु कभी-कभी उस घटनाके स्मरणसे वे अत्यधिक विचलित हो जाते हैं और तब कह उठते हैं, 'भरी बन्दूक नादानोंके हाथमें मैंने पकड़ायी। दण्डका भागी मैं था, किंतु मिला उन्हें। अन्तर्यामी कैसा है यह तुम्हारा न्याय!'

सन्त भी भला, किसीको दोष देते हैं।

(२)

### मंद करत जो करइ भलाई

घटना पुरानी है। घटना क्या है, मानव-मनकी छिपी अन्धकारमयी गुफाओंकी एक भयानक झाँकी है। भयानक विस्फोट जिस प्रकार कभी-कभी पृथ्वीके गर्भमें छिपी वस्तुओंको निकालकर बाहर फेंक देता, उसी प्रकार घटनाएँ भी कभी-कभी मानवके अन्तःप्रदेशको उलीचकर बाहर कर देती हैं और तब हम सोचने लगते हैं कि वैदिक ऋषियों और प्राणाचार्योंने मानव-मनके बारेमें जितने भी सूत्र गढ़े हैं, उनमें कितनी सत्यता है। एक ओर जहाँ इस मनकी विशालताके आगे समुद्रोंकी गहराई और गिरिशृंगोंकी उत्तुंगता तुच्छ और नगण्य प्रतीत होने लगती है, वहाँ दूसरी ओर यह कितना संकीर्ण, तंग और कृतघ्न होता है कि अपने उपकारीका रक्तपान करनेमें भी यह आगा-पीछा नहीं सोचता है।

बात यों हुई कि एक अध्यापक महोदय मानसिक रुग्णतावश जब-तब 'मेडिकल लीव' पर रहते थे। उस समय भी वे छुट्टीपर थे, किंतु जब उन्हें किन्हीं सूत्रोंसे पता चला कि दफ्तरसे उनका वेतन लगकर आया है तो वे वेतन-वितरणके दिन अपने प्रधानाध्यापक महोदयके पास पहुँचे और वहाँ अपनी विपन्नावस्थाका वर्णनकर उस वेतनको देनेकी प्रार्थना की। सरकारी नियमानुसार मेडिकल लीवपर रहते व्यक्तिको वेतन उसी समय मिलता है, जब वह स्वस्थ होकर रोग-मुक्त प्रमाणपत्रके साथ कामपर लग जाता है, किंतु कुछ तो उसकी करुण कहानी सुनकर और कुछ आर्थिक संकटाभारसे ग्रसित उसकी दीनदशाको निहारकर प्रधानाध्यापकजीने वह वेतन उसे दे दिया, किंतु वेतन प्राप्त करनेकी ऑफिसकॉपीपर उसके हस्ताक्षर लेना भूल गये। बादमें जब उन्हें इस चीजका ज्ञान हुआ तो उन अध्यापकको ढुँढ़वाया गया, किंतु वे तो तबतक जा चुके थे। कागज दफ्तर पहुँचा

दिये गये। बात आयी-गयी हो गयी। समय काले-धौले पंखोंपर सवार हो उड़ता रहा।

और तब एक दिन उन्हीं अध्यापकने उच्चाधिकारियोंके पास प्रार्थनापत्र भेजा कि उन्हें अमुक मासका वेतन दिलवाया जाय; क्योंकि उस अवधिमें वे मेडिकल लीवपर थे। प्रधानाध्यापकजीने उससे कहा—'भैया, तुम्हें वेतन मैंने दिया है और तुम्हारे हस्ताक्षर भी ओरिजनल कॉपीमें मौजूद हैं। हाँ, दूसरी कापीमें तुम उस समय शीघ्रतावश हस्ताक्षर न कर सके थे। सो अब कर दो। विश्वास न हो तो दफ्तर जाकर देख आओ।' यों कहकर उन्होंने वह दूसरी कॉपी उनके सामने हस्ताक्षरके लिये सरका दी।

'मैं दस्तखत-वस्तखत कुछ नहीं करूँगा और न मैं वेतनके विषयमें ही कुछ जानता हूँ। आपको जो कुछ कहना है अधिकारियोंसे कहिये। मैंने भी तो उन्हींसे कहा है, आपसे तो नहीं कहा।' उन अध्यापकने आँखें तरेरते हुए कहा।

ओरिजिनल कॉपी देखी गयी, लेकिन वह तो नदारद। अधिकारियोंने कहा कि 'दूसरी कापीके हस्ताक्षरोंको देखकर इस बातके सत्यासत्यका निर्णय देंगे।' किंतु दूसरी कापीपर तो हस्ताक्षर ही नहीं थे। द्वेष रखनेवालोंका दाँव लग गया। किसीने मामला 'ऐंटी करप्शन' तक पहुँचा दिया। तहकीकातोंका ताँता शुरू हो गया। वायुकी लहरोंपर सवार खबर एक कोनेसे दूसरे कोनेतक फैल गयी।

अधिकारियोंने प्रधानाध्यापकजीसे 'मेडिकल लीव' की अवधिमें वेतन देनेका जवाब तलब किया तो अध्यापक महोदयने वेतन देनेका प्रमाण माँगा। पक्षी बाज और बहेलियेके बीचमें था।

प्रधानाध्यापकजीने उन अध्यापकको नाना प्रकारसे समझाया—'सोचो… मैंने तुम्हारे साथ क्या बुराई की? क्या संकटापन्न अवस्थामें तुम्हें वेतन दे देना अपकार करना है? मैं वृद्ध हूँ, ब्राह्मण हूँ, मेरे जीवनभरके इतिहासमें ऐसा कलंकपूर्ण काम नहीं मिलेगा। मैं यह भलीभाँति जानता हूँ कि यह काम तुम्हारा नहीं है। तुम्हारे तो कन्धेपर रखकर बन्दूक चलायी गयी है।' यों कहते हुए उन्होंने अपने सिरकी टोपी उतारकर उसके पैरोंमें डाल दी और स्वयं भी अचेत हो वहीं लुढ़क पड़े। पर पाषाण भी कहीं पिघलते हैं।

'मैं दूध-पीता बच्चा नहीं, सेरभर आटा रोज उदरस्थ करता हूँ। उपदेश अपने पास रखिये और अपनी करनीका फल भोगिये।'

प्रधानाध्यापकजीने तब अपने इष्टदेवका कातर-स्मरण किया—'प्रभो! उसे बुद्धि दो, उस बेगुनाहकी ओटमें शिकार खेला जा रहा है।'

और तब एक दिन न जाने कैसे वह खोयी हुई ओरिजिनल कॉपी, जिसमें अध्यापकके हस्ताक्षर थे, दफ्तरमें मिल गयी। उच्चाधिकारियोंने प्रधानाध्यापकजीसे क्षमा माँगी और हितैषियोंने उन्हें प्रतिष्ठापर आघात करनेके अपराधमें अध्यापकपर कानूनी कार्यवाही करनेकी सलाह दी।

'अँधेरी रात तो तारागणको सुन्दर बनाती है। बेटेके साथ बाप भी बहक जाय तो गंगाका जल मीठा कैसे रहेगा?' वे बोले।

और एक दिन लोगोंने सुना उक्त अध्यापक महोदयका मस्तिष्क विकृत हो गया है। सिर मुँडवा लिया है। पागलों-सा प्रलाप करते हैं। घरके सामानको बाँटते फिरते हैं। बहुत कुछ नष्ट-भ्रष्ट भी कर दिया है। प्रधानाध्यापकजीको पता लगा तो तुरन्त वहाँ पहुँचे और सारे बाँटे सामानको पुनः एकत्रितकर तालेमें बन्द किया और अध्यापक महोदयको अपने खर्चसे आगराके मानसिक चिकित्सालयमें प्रवेश कराया। दो-तीन माहके बाद वे महाशय जब वहाँसे स्वस्थ होकर घर पधारे तो अपने पूर्वकर्मोंपर अत्यधिक पश्चात्ताप किया और तत्पश्चात् क्षमा माँगी।

'मेरे ही कर्मोंका प्रतिफल होगा भैया, नहीं तो, कोई किसीको न दुःख देता है न सुख। अपने ही पूर्वकृत कर्म अच्छी-बुरी सृष्टिका निर्माण करते हैं—दूसरा तो कोई निमित्त बनता है।' हलाहल पीकर भी शंकर निरुद्वेग थे।

**उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई॥**

—गोपालकृष्ण जिन्दल

# मनन करने योग्य

## धर्म और संस्कृतकी सेवाके लिये अद्भुत त्याग

पण्डित श्रीरामजी महाराज संस्कृतके महान् धुरन्धर विद्वान् थे। आपके पूर्वजोंकी यह प्रतिज्ञा थी कि हम न तो संस्कृतको छोड़कर एक शब्द दूसरी भाषाका बोलेंगे और न सनातनधर्मको छोड़कर किसी भी मत-मतान्तरके चक्करमें फँसेंगे। मुट्ठी-मुट्ठी आटा माँगकर पेट भरना पड़े तो भी चिन्ता नहीं, भिखारी बनकर भी देववाणी संस्कृतकी, वेद-शास्त्रोंकी और सनातन धर्मकी रक्षा करेंगे। इस प्रतिज्ञाका पालन करते हुए पं० श्रीरामजी महाराज अपनी धर्मपत्नी तथा बाल-बच्चोंको लेकर श्रीगंगाजीके किनारे-किनारे विचरा करते थे। पाँच-सात मील चलकर सारा परिवार गाँवसे बाहर किसी देवमन्दिरमें या वृक्षके नीचे ठहर जाता। ये गाँवमें जाकर आटा माँग लेते और रूखा-सूखा जैसा होता, अपने हाथोंसे बनाकर भोजन पा लेते। अगले दिन फिर श्रीगंगाकिनारे आगे बढ़ जाते। अवकाशके समय बच्चोंको संस्कृतके ग्रन्थ पढ़ाते जाते तथा स्तोत्र कण्ठ कराते।

एक बार श्रीरामजी महाराज घूमते-घामते एक राजाकी रियासतमें पहुँच गये और गाँवसे बाहर एक वृक्षके नीचे ठहर गये। अकस्मात् राजपुरोहित उधर आ निकले। उन्होंने देखा कि एक ब्राह्मणपरिवार वृक्षके नीचे ठहरा हुआ है। माथेपर तिलक, गलेमें यज्ञोपवीत, सिरपर लम्बी चोटी, ऋषि-मण्डली-सी प्रतीत हो रही है। पास आकर देखा तो रोटी बनायी जा रही है। छोटे बच्चे तथा ब्राह्मणी सभी संस्कृतमें बोल रहे हैं। हिन्दीका एक अक्षर न तो समझते हैं, न बोलते हैं। राजपुरोहितको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। राजपुरोहितजीने पं० श्रीरामजी महाराजसे संस्कृतमें बातें कीं। उनको यह जानकर और भी आश्चर्य हुआ कि आजसे नहीं, सैकड़ों वर्षोंसे इनके पूर्वज संस्कृतमें बोलते चले आ रहे हैं और संस्कृतकी, धर्मकी तथा वेदशास्त्रोंकी रक्षाके लिये ही भिखारी बने मारे-मारे डोल रहे हैं। राजपुरोहितसे यह वृत्तान्त सुनकर राजा साहब चकित हो गये। उन्होंने पुरोहितसे कहा कि 'ऐसे ऋषि-परिवारको महलोंमें बुलाया जाय और मुझे उनके दर्शनपूजन करनेका सौभाग्य प्राप्त कराया जाय।' राजा साहबको साथ लेकर राजपुरोहित उनके पास आये और राजमहलमें पधारनेके लिये हाथ जोड़कर प्रार्थना की। पण्डितजीने कहा कि 'हमें राजाओंके महलोंमें जाकर क्या करना है। हम तो श्रीगंगाकिनारे विचरनेवाले भिक्षुक ब्राह्मण हैं।' राजा साहबके बहुत प्रार्थना करनेपर आपने अगले दिन सपरिवार राजमहलमें जाना स्वीकार कर लिया। अगले दिन यह ऋषि-परिवार राजमहल पहुँचा। बड़ी श्रद्धा-भक्तिके साथ राजा साहबने स्वयं अपनी रानीसहित सोनेके पात्रोंमें ब्राह्मणदेवता, ब्राह्मणी तथा बच्चोंके चरण धोकर पूजन किया, आरती उतारी और चाँदीके थालोंमें सोनेकी अशर्फियाँ और हजारों रुपयोंके बढ़िया-बढ़िया दुशाले लाकर सामने रख दिये। सबने यह देखा कि उस ब्राह्मण-परिवारने उन अशर्फियों और दुशालोंकी ओर ताकातक नहीं। जब स्वयं राजा साहबने भेंट स्वीकार करनेके लिये करबद्ध प्रार्थना की, तब पण्डितजीने धर्मपत्नीकी ओर देखकर पूछा कि 'क्या आजके लिये आटा है?' ब्राह्मणीने कहा—'नहीं तो।' आपने राजा साहबसे कहा कि 'बस, आजके लिये आटा चाहिये। ये अशर्फियोंके थाल और दुशाले मुझे नहीं चाहिये।'

राजा साहब—महाराज! मैं क्षत्रिय हूँ, दे चुका, स्वीकार कीजिये।

पण्डितजी—राजा साहब! हम ब्राह्मणोंका धन तो तप है। इसीमें हमारी शोभा है, वह हमारे पास है। आप क्षत्रिय हैं, हमारे तपकी रक्षा कीजिये।

राजा साहब—क्या यह उचित होगा कि एक क्षत्रिय दिया हुआ दान वापस ले ले। क्या इससे सनातन-धर्मको क्षति नहीं पहुँचेगी?

पण्डितजी—अच्छा इसे हमने ले लिया, अब इसे हमारी ओरसे अपने राजपुरोहितको दे दीजिये। हमारे और आपके दोनोंके धर्मकी रक्षा हो गयी।

सबने देखा कि ब्राह्मण-परिवार एक सेर आटा लेकर और सोनेकी अशर्फियोंसे भरे चाँदीके थाल, दुशालोंको ठुकराकर जंगलमें चले जा रहे हैं और फिर किसी वृक्षके नीचे बैठकर वेदपाठ करनेमें संलग्न हैं।

[ प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी ]

## श्रीकृष्णजन्माष्टमी एवं श्रीराधाष्टमीपर उपयोगी प्रमुख प्रकाशन

**( श्रीकृष्णजन्माष्टमी २३ अगस्त शुक्रवारको एवं श्रीराधाष्टमी ६ सितम्बर शुक्रवारको है। )**

**श्रीकृष्णलीलाका चिन्तन ( कोड 571 ) ग्रन्थाकार**—इस पुस्तकमें भगवान् श्रीकृष्णके जन्मसे लेकर बाल तथा पौगण्ड अवस्थाकी विभिन्न लीलाओंका बड़ा ही साहित्यिक, सरस एवं भावपूर्ण चित्रण किया गया है। राजसंस्करणमें अच्छे तथा मोटे कागजपर प्रकाशित यह पुस्तक साहित्यिक मनोभूमिको संस्कारित करनेवाली तथा श्रीकृष्ण-भक्तोंके लिये अनुपम रसायन है। मूल्य ₹१८०

**श्रीकृष्णाङ्क ( कोड 1184 ) ग्रन्थाकार**—इस विशेषाङ्कमें भगवान् श्रीकृष्णके मधुर एवं ज्ञानपरक चरित्रपर अनेक सन्त-महात्मा, विद्वान् विचारकोंके शोधपूर्ण लेखोंका अद्भुत संग्रह किया गया है। मूल्य ₹२००

**पदरत्नाकर ( कोड 50 ) पुस्तकाकार**—इन पदोंमें भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर लीलाओंके चित्रणके साथ ज्ञान, वैराग्य, चेतावनी आदि अनेक विषयोंपर सरल काव्यात्मक प्रकाश डाला गया है। मूल्य ₹११०

**श्रीराधा-माधव-चिन्तन ( कोड 49 ) पुस्तकाकार**—इसमें श्रीराधाकृष्णका अलौकिक प्रेम ही श्रीराधा-माधव-चिन्तनके रूपमें प्रस्फुटित है। भक्ति और शास्त्रीय चिन्तनके अद्भुत समन्वयके साथ यह ग्रन्थ-रत्न सात प्रकरणोंमें विभक्त है। मूल्य ₹१००

**कन्हैया ( कोड 869 ), गोपाल ( कोड 870 ), मोहन ( कोड 871 ), श्रीकृष्ण ( कोड 872 )**—श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके आधारपर लिखी गयी चित्रकथाकी इन पुस्तकोंको भगवान् श्रीकृष्णके जन्मसे लेकर उनके परमधामगमनतककी चुनी हुई लीलाओंसे सजाया गया है। प्रत्येकका मूल्य ₹१५

**महाभाव-कल्लोलिनी ( कोड 526 ) पुस्तकाकार**—इस पुस्तकमें श्रीराधाकृष्णकी विभिन्न लीलाओंसे सम्बन्धित ११६ पदोंका संग्रह है। मूल्य ₹८

**मधुर ( कोड 343 )**—इस पुस्तकमें भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी अभिन्न शक्ति श्रीराधाजी एवं महाभाग गोपिकाओंके दिव्यातिदिव्य प्रेममय उद्गारोंका ७२ झाँकियोंके रूपमें मनोहर काव्यात्मक चित्रण है। मूल्य ₹२५

## श्रीमद्भगवद्गीताके कुछ विशिष्ट प्रकाशन

**गीता-संग्रह ( कोड 1958 )**—श्रीमद्भगवद्गीता गीताप्रेसके द्वारा विभिन्न भाष्यों, टीकाओंके साथ विभिन्न आकार-प्रकारमें प्रारम्भसे ही सतत प्रकाशित हो रही है, किन्तु अन्यान्य महत्त्वपूर्ण गीताएँ आज भी जनसामान्यके लिये दुर्लभ हैं। अन्यान्य गीताओंको भी पाठकोंको सहजतासे एक साथ सुलभ करानेकी दृष्टिसे प्रस्तुत पुस्तकमें गणेशगीता, हंसगीता, नारदगीता, रामगीता, उत्तरगीता, अष्टावक्रगीता, अवधूतगीता, हारीतगीता, यमगीता, भगवतीगीता आदि कुल पचीस गीताओंका सानुवाद संकलन प्रकाशित किया गया है। मूल्य ₹९०

**गीता-चिन्तन [ पुस्तकाकार ] ( कोड 11 )**—प्रस्तुत पुस्तकमें नित्यलीलालीन श्रद्धेय (भाईजी) श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारद्वारा भिन्न-भिन्न रुचि, अधिकार, योग्यतावाले मनुष्योंको कर्तव्य-कर्मका बोध तथा भगवान्‌की ओर गति करानेके उद्देश्यसे लिखे गये गीता-सम्बन्धी लेखों, विचारों, पत्रोंका दुर्लभ संग्रह किया गया है। इसमें गीताके श्लोकोंकी संक्षिप्त टीकाके साथ गीतामें भक्तियोग, शरणागतिका स्वरूप, निष्काम कर्म, आत्माकी शाश्वतता, गीता और वैराग्य आदि अनेक विषयोंपर विशद विवेचन किया गया है। मूल्य ₹७०

**गीता-ज्ञान-प्रवेशिका [ पुस्तकाकार ] ( कोड 464 )**—ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके द्वारा प्रणीत यह पुस्तक गीता-शिक्षार्थियोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है। इसमें गीताके सम्बन्धमें ज्ञातव्य बातें, गीता-पाठकी विधियाँ, गीताके प्रधान और सूक्ष्म विषय, गीता अभ्यासकी कला, गीता (मूल) तथा गीताकी अनुक्रमणिका आदि दी गयी है। मूल्य ₹२५

प्र० ति० 20-06-2019
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2017-2019
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2017-2019

## नवीन प्रकाशन—अब उपलब्ध

**श्रीशिवमहापुराण-सटीक, दो खण्डोंमें [ सचित्र, मूल श्लोक हिन्दी-अनुवादसहित ] ( कोड 2223, 2224 )**—महापुराणोंके क्रममें श्रीशिवमहापुराणका विशेष माहात्म्य है। श्रीशिवमहापुराणमें कुल सात संहिताएँ हैं—प्रथम खण्डमें विद्येश्वरसंहिता तथा रुद्रसंहिता; द्वितीय खण्डमें शतरुद्रसंहिता, कोटिरुद्रसंहिता, उमासंहिता, कैलाससंहिता एवं वायवीयसंहिता है। इनमें शिवभक्तोंके रोचक आख्यानके साथ भक्ति, ज्ञान, सदाचार, शौचाचार, उपासंना, लोकव्यवहार तथा मानव-जीवनके परम कल्याणकी अनेक उपयोगी बातें निरूपित हैं। इसे दो खण्डोंमें प्रकाशित किया गया है। दोनों खण्डोंका मूल्य ₹ ६००

| कोड | पुस्तक-नाम | मूल्य ₹ | कोड | पुस्तक-नाम | मूल्य ₹ |
|---|---|---|---|---|---|
| 2218 | नरसिंहपुराण (गुजराती) | १०० | 2221 | श्रीमन्नारायणीयम् (कन्नड़) | ६० |
| 2217 | श्रीसत्यनारायणव्रतकथा (गुजराती) | १५ | 2204 | Dishonour of Matrishakti | 6 |
| 2208 | वर्णमाला (गुजराती) | २५ | 2205 | Devotee Children | 10 |
| 2219 | मनोबोध (कन्नड़) | १२ | 2206 | Devotee women | 12 |
| 2220 | स्तोत्ररत्नावली (कन्नड़) | ३० | 2207 | Five Devotee-Gems | 15 |

## अति आवश्यक सूचना




गीताप्रेसके सम्मान्य पाठकोंसे निवेदन है कि गीताप्रेसकी पुस्तकोंको खरीदते समय पुस्तकोंपर छपा गीताप्रेस, गोरखपुरका रजिस्टर्ड मोनोग्राम जो, इस सूचनाके साथ छपा है, अवश्य देख लें। आजकल कुछ प्रकाशक अपने प्रकाशनका नाम गीताप्रेससे मिलता-जुलता नाम रखकर अपनी पुस्तकोंको गीताप्रेसकी पुस्तक होनेका भ्रम पैदा कर रहे हैं। अतः पुस्तकें खरीदते समय विशेष सावधानी रखें, पुस्तकोंके ऊपर कृष्णार्जुनके रथके साथ **'गीताप्रेस, गोरखपुर'** हिन्दीमें तथा **GITA PRESS, GORAKHPUR [SINCE1923]** अथवा **GITA PRESS, GORAKHPUR** छपा मोनोग्राम देखकर ही खरीदें।

**व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर**